सिद्धयोग

ापक :
योगेश्वर, अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 320

सिद्धगुफा प्रकाशन नवादा-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 48, अंक : 08
नवम्बर 2015

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति॥

— चाणक्य सूत्र

वह महान है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति॥

— अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे-तैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 48 अंक : 8

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्टे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्मा को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयंभू ! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

नवम्बर 2015

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय – डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी 10
3. श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 13
4. एक साधक की निजानुभूतियां – हेमराज चोपड़ा 17
5. आहार के मामले में सावधानी बरतें – श्री दिनेश चन्द्र 22
6. तेरे द्वारे आया प्रभू जी – जगदीश राए मराल 25
7. श्री मद्भगवद्गीता में प्रबन्धन सूत्र – डॉ. राजकुमारी मिश्रा 26
8. योग – आसन 31
9. आगामी कार्यक्रम 32
10. ये नैन मेरे देखे...... – श्रीमती डॉ. नमिता राकेश सिंह 33
11. मंत्र और हृदय – श्री सत्य प्रकाश शर्मा 34
12. गुंजन 39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियाँ भिन्न-भिन्न होती है और अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति उपासना के मार्ग में निकलता है। किन्तु फिर भी एक प्रश्न उपासक के सामने बना रहा करता है कि गुरूदेव क्या हैं और कितने शक्तिशाली हैं? साधारण रूप से इसका उपसंहार तो इसी के अन्दर हो जाता है।

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरूस्त्रिजगद्गुरू:।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नम:।।

अर्थात्– साधक को चाहिये कि वह अपने इष्टदेव को सकल अंड-ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरूदेव को तीनों लोकों का गुरू समझे, प्राणी मात्र के अन्दर ओत-प्रोत रहने वाले दिव्य चेतना को अपना ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध: स एव स:।

अर्थात्–परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय-इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरुषों ने अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रकट कर लिया, धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था, उसको केवल मात्र बहलावे के लिये किसी पंडित ने कह दिया कि तुम्हारे हाथ में जो टुकड़ा है इसके अन्दर श्री श्यामसुन्दर छिपे हुए हैं। उसके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूंढ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथायें हैं। जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया है। इसलिये ''**मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो**'' की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्य मान ही सकता है।

तात्विक बात

किन्तु तात्विक बात क्या है? इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठाकर अध्ययन करते हैं तो उस समय देखते हैं कि भगवान शिव के आराध्यदेव श्री रामचन्द्र जी हैं। इसके लिये सबल प्रमाण है-सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदाशिव ने उनका परित्याग कर दिया था। उनका अपराध इतना ही था कि उन्होंने भगवान शिव की अर्धांगिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए

कृत्रिम सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिये कर दिया क्योंकि उन्होंने उनके आराध्यदेव श्री रामकी पत्नी सीता का रूप धारण किया था, जिसको वे मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी सी भूल का इतना बड़ा परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अंगीकार नहीं किया तब तक उन्हें घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रहीं। अर्धांगिनी रूप से उनका मिलन फिर सती स्वरूप में न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से हुआ। पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम, भगवान शिव के आराध्यदेव हैं। उधर पद्मपुराणान्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्री राम को, जबकि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व उन्होंने दण्डकारण्य में रहकर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जपते हुए व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया। परिणाम स्वरूप भगवान सदाशिव प्रगट हुए। भगवान शिव के प्रगट होने का विषद वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे-धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट होकर श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा:-

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि।।

हे राम! तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो तुम चिन्ता के लायक नहीं हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंपकर सीता को वापस ले आये। जिस समय श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध बनाना आरम्भ किया उससे पहले उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान सदाशिव की प्रतिष्ठा समुद्र किनारे की एवं भगवान शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे उस समय अपनी सहधर्मिणी सीता को अपने बनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से भगवान शिव की जहाँ आराधना की गयी थी उस स्थान को दिखलाते हुए श्रीराम ने कहा-

"अत्र पूर्व महादेवः प्रसाद मकरोद्विभुः।"

अर्थात् हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह आभासित होता है कि भगवान सदाशिव श्रीराम के आराध्य देव हैं। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उनके गोकुल में बाललीला के समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते हैं और उन्हें अपना इष्टदेव बतला करके

यशोदा जी से प्रार्थना करके दर्शन करते हैं। द्वारिका वास के समय में रूक्मिणी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप उनके घर में रूक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ–साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव का पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है। एक बार माध्यान्हिक नित्यकर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया–

त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा जगद्गुरूः।

तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्व वदास्मान्।।

अर्थात्–हे श्रीकृष्ण! तुम स्वयं परमात्मा जगदगुरू विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार हैं यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। इसलिये हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ कि भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्यदेव किस प्रकार हैं? भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्विक बात को जानते हो फिर भी तुमने लोकहित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हें समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान होकर सुनो।

ज्योतिर्यत् परमानन्दं सावधानमतिः श्रृणु।

वामांगादभेवतस्य सोहंविष्णुरिति स्मृतः।।

जनयामास धातारम दक्षिणांगात्सदाशिवः।

मध्यतो रूद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः।।

तपस्तपन्तु भोवत्सा इति तानब्रवीच्छिवः।

अर्थात्–जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिये विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी को पैदा किया और मध्य से रूद्र जी को पैदा किया और हम सब की उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान जी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रो तुम तप करो। इस से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही हैं और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथायें मिलती हैं।

एक बार ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य लोक में जा निकले, वह लोक बड़ा दिव्य था, जिसको ये लोग पहले जानते ही नहीं थे। जब उस लोक में ये आगे बढ़ते ही चले गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा को देखा। ज्यों ही इन सबने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवक स्त्रियाँ

बन गये। जब अपने आप की यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णुभगवान ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा:–

हे माता! हमने यहां आकर के यह जान लिया कि सृष्टि की उत्पति और प्रलय तुम से ही होती है। हमने इस लोक में आ करके हरि और ही देखे। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञात होता है कि और भुवनों में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ही होंगे। हे माता! हम तेरे महान प्रभावों को नहीं जान सके। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी परे और तत्व है, जिस तत्व की ये स्वयं आराधना करते हैं। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आपने युद्ध के समय जो गीता सुनाई थी वह अब मुझे पूरी–पूरी तरह याद नहीं है इसलिये कृपा करके मुझे गीता का उपदेश दुबारा कर दीजिये। अर्जुन की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन! तुमने यह बड़ी भारी भूल की कि उस परमोदेश को भुला दिया –

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तुंह्यशेषतः।
परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया।।

अर्जुन तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बहुत भारी गलती की। वह उपदेश मैंने योग युक्त होकर दिया था। इसलिये वह स्वयं परब्रह्म का ही उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा का तैसा अब मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को पढ़ करके भी कृष्ण का योग युक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तारतम्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह प्रगट होता है कि श्रीराम के रूप में श्रीशिव ने व कभी शिव के रूप में श्रीराम ने किसी और ही तत्व की उपासना की थी जो परात्पर है और सर्वतोवन्द्य है, सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं और वह सत्ता उनसे भी परे है। हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में श्रीगुरूदेव की बहुत बड़ी महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा–विष्णु–शिव हैं। अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं।

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा–विष्णु–महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरूसेवया।।

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते हैं कि यह कोई अव्यक्त सत्ता है। जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों में विशेषतः ब्रह्म विद्योपनिषद में सीधे शब्दों में स्पष्ट कहा गया है:–

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।।
गुरूभक्तिः सदा कुर्याछ्रेयसे भूयसे नरः।।
गुरूदेव हरिः साक्षान्नान्यां इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।।

अर्थात्–वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म, जो कर्म उपासना आदि का विषय है उस

सबको छोड़कर परम श्रेय लाभ करने के लिये मनुष्य को गुरुभक्ति करनी चाहिये। गुरुदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है? यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहाँ पर गुरु भक्ति की चर्चायें चला करती है वहाँ से मनुष्य अपना नाक मुँह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं और कहा करते हैं कि यह गुरुडम है, ढकोसला है, एक आदमी का प्रपंच है जो कुछ भोले-भोले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सद्गुरु तत्व को बिलकुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे हैं। श्वेताश्वर उपनिषद का लेख है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात्-मनुष्य की जैसी अपने इष्टदेव में श्रद्धा हो वैसी ही गुरुदेव में भी होनी चाहिए तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरु के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखनी ही चाहिये और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरुदेव का क्या स्वरूप है? उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। योग-दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने गुरु का व्याख्यान करते हुए सूत्र की रचना की-

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यासदेव जी ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं:-

पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते,

यत्रावच्छेदनार्थेन कालो नोपावर्त्तते,

स एष पूर्वेषामपि गुरुः। यथादस्य,

सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽति,

क्रान्ति सर्गादिष्वपिप्रत्येतव्यः।

इसका अर्थ यह है-कि वह नित्य शुद्धचित्त परमात्मा सृष्टि के शुरूआत से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है वह अनादि सिद्ध है उसकी ही एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है, इसी सूत्र के भाष्य में-

भास्वती टीका में:-

पूर्वे गुरवो हिरण्यगर्भादयः कालेनाच्छिद्यन्ते।

अर्थात्-जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है वह अविकृत सीमा है। सद्गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है, जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है। परमात्मा की सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक

ब्रह्मा, विष्णु, शिव है।

तत्र-तत्र चतुर्वक्त्रा ब्राह्मणो हरयो भवाः

असंख्याताश्च रूद्राद्या, असंख्याता पितामहाः।

हरयश्चाप्य संख्याता, एक एव महेश्वरः।।

अर्थात्-अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं और वह सद्गुरु तत्व नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है, उसमें से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशाद्या सकला देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि।

अर्थात्-ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती हैं या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं, अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है:-

यत्रावच्छेदनार्थे कालो नोपावर्तते स गुरुः।

अर्थात्-जिसका अन्त करने के लिये काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता सद्गुरु तत्त्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं:-

भयादस्य अग्निरतपति, भयात्तपति सूर्यः।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युः धावति पंचमः।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकौ नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।।

अर्थात्-वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े-दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाशशील है वहाँ न सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता है न बिजली का प्रकाश है अग्नि का तो कहना ही क्या?

उसी के कारण यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है, वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है, वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की की जाती है जिसके अन्दर यह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद का वचन है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमैवेष वृणुते तेन लभ्यस्त-स्यैष आत्मा विव्रुणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात्-यह आत्मा बहुत प्रवचन-बाजी से बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिसका वह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है। और जिसे यह मिल

जाता है उसके शरीर को यह अपना बना लेता है। इस मंत्र का सीधा सा अर्थ यही हुआ है –

जानत तुम्हहि तुम्हहिं होइ जाई।

अर्थात्–उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ही नित्य चेतन–घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते हैं उसमें वे स्वयं ही होते हैं। अतः तात्विकी बात तो यही है कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरु पद वाच्य है। वैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृतकृत्य हो चुका है जिसकी परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली निर्वाण की वृत्ति ही शेष है, और वह भी वृत्ति हर समय अस्मि, अस्मि, अस्मि का ही जाप किया करती है। इसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो योगी ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट स्थिति में पहुँच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति शेष है जो अपने आपको सर्व भूतस्थ देखता है और सर्व भूतों को अपने अन्दर देखता है, उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है। भेदभाव की श्रृंखला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथानुसार:–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

इस प्रकार का व्यक्ति भी योग युक्त होने से गुरु पद वाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके यह सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरु है। वही शक्तिपात कर सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिये हमारे मन के अन्दर जो गुरु शब्द की अवहेलना रही है उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरु की सही परिभाषा नहीं जानते। पुराणों में गुरु की परिभाषा निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है:–

गु शब्द स्त्वन्धकारोऽस्ति, रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद, गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात्–'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है अन्धकार को नष्ट करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरु है। और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है। इसलिये साधक के लिये पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया:–

यावत्कल्पांतको देह–स्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत्।।

अर्थात्–कल्पभर रहने वाला शरीर भी प्राप्त हो जाये और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाय तो भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिये। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरु की उपेक्षा कभी न करनी चाहिये। तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

श्री महावाल्मीकीय रामायण एवं योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

(पिछले अंक में आपने पढ़ा कि राजा दशरथ अपनी भूल से अत्यन्त व्यथित है। श्री राम के बिना वे जीना नहीं चाहते। वे स्वयं भी श्री राम के साथ वन को जाने को तैय्यार हो जाते हैं। कैकयी को बहुत फटकारते हुये कटु शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस अंक में हम देखेंगे कि किस प्रकार से कैकेयी अपने क्रूर हाथों से श्री राम को चीर (चीथड़े) पहनने को देती है, तथा अपने ही हाथों से सीता को भी चीर पहनाने में शर्म नहीं आती। कैकेयी का चरित्र बड़ा ही कठोर है। भारतीय नारी समाज में आज भी कोई अपनी पुत्री का नाम कैकेयी नहीं रखता। रामायण के पात्रों में एक पात्र है रावण जो दुष्कर्मी है धर्म विरोधी है। विद्वान होते हुये भी नीच प्रकृति का है। इस कारण से कोई भी अपने बेटे का नाम रावण नहीं रखता। रामायण के कैकयी और रावण अति गर्हित (निन्दित) पात्र हैं। सीता जी को कैकयी द्वारा चीर पहनने के लिये दिये जाने पर राजा दशरथ क्षुब्ध हैं। वे कैकयी से कहते हैं– तू पापिनी है कुल कलंकिनी है। सीता को चीर पहना कर तू अपने लिये नरक का द्वार खोल रही है। इस प्रकार से कठोर शब्दों का प्रयोग करते हुये कैकयी को बहुत फटकारते हैं किन्तु कैकयी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। श्री राम चरित मानस में वल्कल पहनाये जाने का प्रकरण नहीं के बराबर है ।)

–सम्पादक

श्री राम ने राजा दशरथ से विनीत शब्दों में कहा – राजन् ! मैं भोगों का परित्याग कर चुका हूँ। मुझे वन में ही फल–मूलों से निर्वाह करना है। मैं सब ओर से आसक्ति छोड़ चुका हूँ। अब मुझे सेना की आवश्यकता नहीं है। जो श्रेष्ठ गजराज का दान करके उसके रस्से से लोभ करता है यह उचित नहीं है। सत्पुरुषों में श्रेष्ठ महाराज ! मुझे सेनादि की कोई आवश्यकता नहीं है। ये सारी वस्तुयें मैं भरत को अर्पित करने की अनुमति देता हूँ। मेरे लिये तो माता कैकयी चीर (चीथड़े) ही ला दें। दासियों जाओ ! मेरे लिये तुम खन्ती और पेटारी अथवा कुदारी और खाँची दोनों वस्तुयें ला दो। चौदह वर्ष तक वन में रहने के लिये ये चीजें उपयोगी होंगी।

खनित्र पिटके चो भे समानयत गच्छत ।
चतुर्दशे वने वासं वर्षाणि वसतो मम ।।

कैकयी लोक–लाज छोड़ चुकी थी। वह स्वयं चीर उठाकर ले आयी और सभी के सामने श्री राम से कहने लगी – लो ! पहन लो।

अथ चीराणि कैकयी स्वयमाहृत्य राघवम्
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा।

पुरुष सिंह श्री राम ने कैकयी से वे चीर ले लिये और राजसी वस्त्र उतारकर मुनियों के से वस्त्र पहन लिये। लक्ष्मण जी ने भी वैसे ही किया। सीता अपने लिये पहनने के लिये चीर वस्त्रों को प्रस्तुत देखकर उसी प्रकार डर गई जिस प्रकार से मृगी अपने लिये बिछे जाल को देख कर डर जाती है। कैकयी के हाथों से दो चीर वस्त्र लेकर लज्जित सी हो गई। उसके मन में बड़ा दुःख हुआ और नेत्रों में आंसू भर आये। इस प्रकार के वल्कल वस्त्र को लेकर वह उसे बाँध नहीं पा रही थी। तब श्री राम ने स्वयं वल्कल पहनाया। यह दृश्य देखकर रनिवास की स्त्रियाँ कहने लगी – मनस्विनी सीता को इस प्रकार वनवास की आज्ञा नहीं दी गई है। प्रभो! तुम पिता की आज्ञा पालन हेतु चौदह वर्षों तक वन में रहो किन्तु इसे हमारे पास छोड़कर हमारा जीवन सफल होने दो। यह मुनियों की भाँति वन में फिरने योग्य नहीं है। श्री राम ने सीता को वल्कल पहना ही दिया। यह दृश्य देखकर गुरु वशिष्ठ के नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने कैकयी से कहा – मर्यादा का उल्लंघन करके अधर्म की ओर पैर बढ़ाने वाली दुर्बुद्धि कैकयी– तू कैकय राज के कुल की जीती–जागती कलङ्क है। अरी! राजा को धोखा देकर अब तू सीमा से बाहर जा रही है –

अति प्रवृत्ते दुर्मधे कैकायि कुलपांसनि
वञ्चार्यत्वा तु राजानं प्रमाणेऽवतिष्ठसि ।

शील का परित्याग करने वाली दुष्टे। देवी सीता वन में नहीं जायेगी। श्री राम के लिये प्रस्तुत हुये राज सिंहासन पर यह बैठेगी। सम्पूर्ण गृहस्थियों की पत्नियाँ उनका आधा अंग होती है। इस तरह सीता देवी भी श्री राम की आत्मा है। अतः उनकी जगह ये राज्य का पालन करे निम्न श्लोक पढ़े –

आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ।

यदि विदेहनन्दिनी सीता श्री राम के साथ जायेगी तो हम लोग भी उनके साथ जायेंगे। अन्तःपुर के रक्षक भी चले जायेंगे। अपनी पत्नी के साथ श्री रामचन्द्र जी जहाँ निवास करेंगे वहीं इस राज्य के लोग भी धन–दौलत और आवश्यक सामान लेकर चले जायेंगे। भरत और शत्रुघ्न भी चीर वस्त्र धारण कर वन में रहेंगे और अपने बड़े भाई की सेवा करेंगे, फिर तू अकेली ही वृक्षों के साथ इस निर्जन एवं सूनी पृथ्वी पर राज्य करना। गुरु वशिष्ठ आगे कहते हैं – कैकयी! तू बड़ी दुराचारिणी है और प्रजा का अहित करने में लगी हुई है। याद रखो! श्री राम जहाँ के राजा न होंगे वह राज्य, राज्य नहीं रह जायेगा, जंगल हो जायेगा तथा श्री राम जहाँ निवास करेंगे वह वन एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायेगा। पढ़िये निम्न श्लोक –

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ।

भरत भी पिता के अप्रसन्नता पूर्वक दिये गये राज्य की इच्छा नहीं करेंगे तथा तुम्हारे साथ यहाँ रहने की इच्छा नहीं करेंगे।

यदि तू पृथ्वी छोड़कर आकाश में उड़ जाये तो भी अपने पितृकुल के आचार व्यवहार को

समझने वाले भरत इस के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे। तुमने पुत्र का प्रिय करने की इच्छा से वास्तव में उसका अप्रिय ही किया है क्योंकि संसार में ऐसा कोई नहीं है जो श्री राम का भक्त न हो। कैकयी ! श्री राम के साथ मृग, पशु, सर्प तथा पक्षी एवं यहाँ तक कि वृक्ष भी जाने को तैय्यार हैं। कुल गुरु ने पुनः कहा – देवी ! सीता तेरी पुत्र वधु है। इनके शरीर से वल्कल वस्त्र हटाकर इन्हें पहनने के लिये उत्तमोत्तम वस्त्र दे। इनके लिए वल्कल बिल्कुल उचित नहीं है। ऐसा कहकर गुरु वशिष्ठ ने सीता को वल्कल पहनने से मना कर दिया। गुरुदेव पुनः कैकयी से बोले – तुमने राम के लिये ही वनवास माँगा है सीता के लिये नहीं। अतः सीता सुन्दर वस्त्र व आभूषणों से युक्त होकर श्री राम के साथ जाये। राजकुमारी सीता मुख्य – मुख्य सेवकों के साथ सवारियों में वन को प्रस्थान करे। सीता के लिये वनवास नहीं है अतः वल्कल पहनाने की बात कहाँ से आई ? गुरु वशिष्ठ के ऐसा कहने पर भी सीता ने पति के अनुसार ही वल्कल पहनना उचित समझा। सीता को वल्कल वस्त्र धारण करते देखकर समस्त जनता ने जोर – जोर से चिल्लाना शुरु कर दिया ' राजा दशरथ तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। 'लोगों के इस प्रकार धिक्कार युक्त वचन सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त दुःखी होकर अपने जीवन, धर्म व यश की इच्छा त्यागकर गर्म–गर्म श्वांस खींचते हुये अपनी भार्या कैकयी से कहने लगे कैकयी ! सीता कुश–चीर पहनकर वन जाने योग्य नहीं है। वह सुकुमार है, बालिका है, सुख में पली है। गुरुदेव ठीक कहते हैं वह वन जाने योग्य नहीं है। सीता सम्पूर्ण श्रृंगार युक्त हो कर राजसी वस्त्रों में, रत्नों के साथ वन को जाये ताकि वहाँ सुख से रह सके। मैं जीवित रहने योग्य नहीं हूँ। मैंने तेरे वचनों में बँध कर यों ही शपथ पूर्वक क्रूर प्रतिज्ञा कर डाली है। तुमने भी सीता को इस प्रकार जानबूझ कर वल्कल पहनाये हैं। जिस प्रकार बाँस का फूल उसी को सुखा डालता है उसी प्रकार मेरी की हुई प्रतिज्ञा मुझे ही भस्म किये डालती है। नीच पापिनी ! यदि श्री राम ने तेरा कोई अपराध किया है तो उसे तो वनवास दे चुकी है, विदेह नन्दिनी सीता ने ऐसा दण्ड देने योग्य कौन सा अपराध किया है। पापिनी। तूने श्री राम को वनवास देकर ही पूरा पाप कमा लिया है और अब सीता को भी वन में भेजने और वल्कल आदि पहनने का दुष्ट कर्म करके इतने पातक क्यों बटोर रही है। जान पड़ता है तुझे घोर नरक में जाने की इच्छा हो रही है।" राजा दशरथ सिर नीचा किये हुये इस प्रकार बोल रहे थे उस समय वन की ओर जाते हुये श्री राम ने पिता दशरथ से इस प्रकार कहा – धर्मात्मा ! ये मेरी यशस्विनी माता कौशल्या अब वृद्ध हो चली है। इनका स्वभाव बहुत ही उच्च एवं उदार है। देव ! यह कभी आप की निन्दा नहीं करती। इन्होंने पहले कभी ऐसा भारी संकट नहीं देखा है। वर दायक नरेश ! ये मेरे न रहने से शोक के समुद्र में डूब जायेगी अतः आप इनका सम्मान करते रहें। आप से पूर्ण सम्मानित होकर यह पुत्र शोक का अनुभव न कर सकें और मेरा चिन्तन करती हुई भी आप के आश्रय में ही ये मेरी तपस्विनी माता जीवन धारण कर सके ऐसा आप को प्रयास करना चाहिये। इन्द्र के समान तेजस्वी महाराज ! ये निरन्तर अपने बिछुड़े हुये बेटे के दर्शन को उत्सुक रहेगी। कहीं ऐसा न हो, मेरे वन में रहते ये शोक कातर हो अपने प्राणों का त्याग करके यम लोक को चली जाये अतः आप मेरी माता की हमेशा ही सम्हाल रखें।

(क्रमशः)

श्री मद्भागवत में योग परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

छठे स्कन्ध के छठे अध्याय में , निराश हतास दक्ष को ब्रह्मा जी ने सान्तवना देकर शांत किया। आगे उनकी आज्ञा से असिन्की के गर्भ से साठ कन्याएँ हुई। आगे चलकर इनका विवाह धर्म के साथ दस, तेरह कश्यप ऋषि को, सत्ताइस चन्द्रमा को, दो भूत को, दो अंगीरा ऋषि को, दो कृशाश्व को और शेष चार तार्क्ष्य नामधारी कश्यप को व्याह दीं। इन साठ कन्याओं के वंश विस्तार को इस अध्याय में वर्णित किया गया है।

सातवें अध्याय में गुरुदेव का अपमान देवराज इन्द्र द्वारा किया जाना और इन्द्र व देवताओं का संकट में पड़ने का वर्णन किया गया है। मद में भरे इन्द्र का सभा में आये गुरु बृहस्पति को देख कर भी अनदेखा करना भारी पड़ गया। बृहस्पति जी ने देखा यह ऐश्वर्य मद में चूर है अतः वे शीघ्रता से निकलकर घर चले गये। तब इन्द्र को होश आया। भिन्न–भिन्न प्रकार से अपनी निन्दा करते हुये एवं गुरुदेव बृहस्पति जी का गुणगान करते हुये सभा में बोले – मेरे गुरुदेव ज्ञान के अथाह समुद्र हैं। मैंने बड़ी शठता की। अब मैं उनके चरणों में गिरकर उन्हें मनाऊँगा।

" प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन "

जिस समय इन्द्र इस प्रकार गुरुदेव को मनाने हेतु सोच रहे थे उस समय अन्तर्यामी बृहस्पति जी अपने घर से निकल कर योग–बल से अन्तर्धान हो गये :–

एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान गृहात् ।
बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ।।16।। अ.7, स्क.6

असुरों ने अपने गुरु शुक्राचार्य की कृपा छाया में रहते हुये इस अवसर का फायदा उठाकर, आक्रमण देवों पर कर दिया। देवताओं की बड़ी दुर्दशा हुई। ब्रह्मा जी देवताओं को धीरज बँधाते हुये बोले– ऐश्वर्य मद से अंधे होकर ब्रह्मज्ञानी, वेदज्ञ, संयमी, ब्राह्मण का सत्कार नहीं किया उसी अनीति का फल भोग रहे हो। अब तुम लोग शिघ्र त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास जाओ वही तुम्हारा काम बना सकते हैं। इन्द्र एवं सब देव विश्वरूप के पास जाकर उनकी अभ्यर्थना करते हुये कहा – तुम ब्रह्मनिष्ठ हो अतः जन्म से ही हमारे गुरु हो। हम तुम्हें आचार्य के रूप में वरण करते हैं। तुम हमें हमारे शत्रुओं पर विजय दिलाओ –

वृणिमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ।
यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ।।32।। अ.7, स्क.6

देवताओं के प्रार्थना करने पर, विश्वरूप ने पौरोहिती का काम ब्रह्मतेज को क्षीण करने

वाला बताया है। परन्तु देवता बहुत अनुनय विनय किये इस पर वे उनका पुरोहिती करने को तैयार हो गये। विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से असुरों को हराकर देवताओं को उनकी सम्पत्ति दिला दी।

" आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभु: । "

स्कन्ध छठे के अध्याय आठ में " नारायण कवच " का विस्तार पूर्वक वर्णन, महत्व एवं परिणाम के दृष्टि से किया गया है। साकार भगवान नारायण के मानस चिंतन से सर्व प्रकार के विघ्न–बाधाओं से छुटकारा तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। एक स्थान पर प्रार्थना किया गया है कि भगवान नारायण मारण–मोहन आदि भयकर अभिचारों से मेरी रक्षा करें। ऋषि श्रेष्ठ नर अहंकार से, योगेश्वर भगवान दत्तात्रेय योग के विघ्नों से तथा भगवान कपिल कर्म बन्धनों से मेरी रक्षा करें –

मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादा
न्नारायण: पातु नरश्च हासात।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथ :
पायाद् गुणेश: कपिल: कर्मबन्धनात् ।।16।। अ.8, स्क.6

नारायण कवच को धारण करने वाला जिसको भी अपने नेत्र से देखता है अथवा पैर से छू देता है, वह तत्काल समस्त भयों से मुक्त हो जाता है।

एक ऋषि इस विद्या को धारण करके योगधारणा से अपना शरीर मरुभूमि में त्याग दिया। मृत ब्राह्मण के शरीर के उपर से गन्धर्वराज चित्ररथ अपने विमान से गमन कर रहे थे, आश्चर्य उनका विमान पृथ्वी पर गिर पड़ा। उन्हें बालखिल्य मुनियों ने बताया कि यह नारायण कवच धारण करने का प्रभाव है।

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन द्विज: ।
योगधारणाय स्वाङ्गं जहौ मरुधन्वनि ।।38।। अ.8, स्क.6

आगे नवमें अध्याय में, विश्वरूप का इन्द्र द्वारा वध, वृत्रासुर द्वारा देवताओं का हारना और दधीचि ऋषि का चरित्र वर्णन किया गया है।

कितना भी ज्ञानी, पराक्रमी, क्यों न हो कर्म की गति अत्यन्त गहन है। विश्वरूप की माता असुर–कुल की थी। अत: मातृस्नेह के कारण विश्वरूप यज्ञ आहुती देते समय देवताओं को स्पष्ट रूप से तथा छिपकर असुरों को भी मदद करते थे। देवराज इन्द्र से यह छिपा नहीं रहा। क्रोध से भरकर इस कपट व्यवहार के लिये इन्द्र ने उनका वध कर दिया।

विश्वरूप के पिता ने (त्वष्टा ने) मंत्र–यज्ञ द्वारा तमोगुणी, अत्यन्त क्रूर वृत्रासुर को उत्पन्न किया। देवताओं का सामर्थ उसके सामने नगण्य हो गया। तब दीन–हीन देव एकाग्र चित्त से श्री नारायण की शरण में गये। भिन्न–भिन्न स्त्रोतों से प्रार्थना किये। प्रभो ! परम हंस,

विरक्त महात्मा, आत्म संयमरूप परम् समाधि से ही भली भाँति आपका चिंतन करते हैं – "परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोग समाधिना"। श्री भगवान स्तुतियुक्त उपासना से प्रसन्न होकर देवताओं के सम्मुख प्रगट हुए और बोले – देवराज इन्द्र ! तुम लोगों का कल्याण हो। अब देरमत करो। दधीच ऋषि का शरीर, उपासना, व्रत, तपस्या से अत्यन्त दृढ़ हो गया है। दधीच ऋषि को शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान है। उनसे उनके शरीर माँग लो। विश्वकर्मा के द्वारा एक श्रेष्ठ शस्त्र बनाकर वृत्रासुर का वध करो। यही तुम्हारे लिये परम उपाय है।

दशम अध्याय में दधीचि ऋषि अस्थियों से वज्र–निर्माण तथा वृत्रासुर पर आक्रमण की कथा का वर्णन है। इन्द्र एवं देवताओं द्वारा ब्रह्मज्ञानी दधीच से शरीर याचना करने पर। महर्षि ने अपने को पर ब्रह्म में लीन कर अपना शरीर त्याग दिया। उनके इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि तत्वमयी थी उनके सारे बन्धन कट चुके थे। अतः उन्हें पता ही न चला कि उनका कब शरीर छूट गया।

एवं कृत व्यवसितो दध्यङ्ङार्थवण स्तनुम् ।
परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥11॥ अ.10, स्कं 6

दधीच ऋषि के अस्थि से विश्वकर्मा ने अमोघ अस्त्र वज्र का निर्माण किया। इन्द्र उसे धारण कर वृत्रासुर से घनघोर युद्ध करता है। असुरों के पैर उखड़ गये। युद्धभूमि से पलायन करने लगे। उस समय वृत्रासुर वीर वाणी में अपनी सेना को सम्बोधित करते हुये बोला – देखो ! संसार में दो प्रकार की मृत्यु परम दुर्लभ और श्रेष्ठ मानी गयी है – एक तो योगी पुरुष का अपने प्राणों को वश में करके ब्रह्मचिन्तन के द्वारा शरीर का त्याग और दूसरा युद्ध भूमि में लड़ते–लड़ते मर जाना –

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ
यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः।
कलेवरं योग रतो विजह्याद् यदग्रणिर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥

वृत्रासुर अपने भागते हुये असुरों को देख क्रोधित हो इन्द्र के ऐरावत हाथी पर गदा से वार किया जिससे ऐरावत का मस्तक फट गया वह तिलमिलाता पीछे की ओर हटा। इन्द्र ने अपने अमृतमयी हाथ फेर कर उसे ठीक कर दिया।

वृत्रासुर ने ललकारते हुये इन्द्र से कहा – इन्द्र ! भगवान नारायण के आज्ञा का पालन कर। तुम मुझे जल्द वज्र से मार डाल जिससे मैं उन प्रभु के अभय चरण कमलों को प्राप्त कर सकू। वृत्रासुर अनन्य भाव से प्रभु के चरण कमलों का चिंतन करते हुये प्रार्थना किया – सर्व सौभाग्य निधे ! मैं आपको छोड़ कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डल का साम्राज्य, रसातल का एक छत्र राज्य, योग की सिद्धियाँ तथा मोक्ष भी नहीं चाहता –

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं,

न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ।। 25।। अ. 11 स्कं.6

देवराज इन्द्र ने नारायण कवच से अपने को सुरक्षित कर रखा था और उनके पास प्रभु का दिया योगमाया का बल भी था। इसके बावजूद वृत्रासुर इन्द्र को निगल गया। देवता भयभीत और दुखी हो गये। इन्द्र वज्र से उसके पेट को फाड़ निकल आये तथा वज्र से उसके गर्दन को सब ओर से काटकर गिरा दिया—

निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः।
महापुरुषसन्नद्धो योगमाया बलेन च ।। 31।। अ.12 स्कं.6

तेरहवें अध्याय में ब्रह्महत्या ने इन्द्र पर आक्रमण किया। जिसके कारण बड़ा कष्ट तथा बेचैनी इन्द्र को सहना पड़ा। वे उसके भय से भागकर मानसरोवर में छिप गये। इस एक हजार वर्षों की अवधि में राजा नहुष स्वर्ग का शासन अपनी विद्या, तपस्या और योगबल से करते रहे—

तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास,
विद्यातपो योगबलानुभावः।
स सम्पदैश्वर्यमदान्ध बुद्धि—नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ।।16।। अ.13, स्कं.6

परन्तु ऐश्वर्य के मद से अंधे हुये नहुष ने इन्द्राणी शची के साथ अनाचार करना चाहा, तब शची ने उनसे ऋषियों का अपराध करवा कर शाप दिला दिया – जिससे नहुष सर्प योनी में पहुँच गये। यह कथा सर्व विदित है।

वृत्रासुर का भगवान के चरणों में अनन्य भक्ति का कारण क्या था ? यह स्कन्ध छः के चौदहवें अध्याय में बताया गया है।

राजा परीक्षित ने पूछा – प्रभो ! करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषों में भी वृत्रासुर जैसा शाँत चित्त, भगवान परायण पुरुष मिलना कठिन है। भगवान शुकदेव जी ब्रत्रासुर का पूर्व चरित्र सुनाते हैं। प्राचीन काल में महाराजा चित्रकेतु शूरसेन देश में राज्य करते थे। अनेक रानियों के होते हुये वे संतान रहित थे। एक दिन समर्थ अङ्गिरा ऋषि स्वच्छन्द भ्रमण करते हुये चित्रकेतु के महल में पहुँच गये। राजा यथोचित स्वागत करने के बाद उनके चरणों में बैठ गये।

महर्षि अंगीरा राजा की चिन्ता जानते थे। परन्तु प्रत्यक्षतः पूछा – राजन ! तुम किस बात से चिन्तित दीखते हो ?

सम्राट चित्र केतु ने विनय पूर्वक कहा – भगवन ! योगी अपनी तपस्या, ज्ञान, धारणा, ध्यान, समाधि के द्वारा प्राणियों के बाहर—भीतर की सभी बातें हस्तामलक जानते हैं ।

(क्रमशः)

एक साधक की निजानुभूतियां

– हेमराज चोपड़ा, मण्डी (हि.प्र.)

कई वर्ष पूर्व माण्डव्य ऋषि हिमालय से उतर कर ऊँची – ऊँची पहाड़ियों के मध्य में व्यास नदी के किनारे स्थित इस नगरी मे पहुंचे तो यहाँ की नैसर्गिक सुन्दरता से मोहित हो गए। यहीं व्यास नदी में स्थित एक बड़ी चट्टान में गुफा बनाकर तपस्या करने लगे। यह चट्टान सिखों के प्रसिद्ध गुरु गोविन्द सिंह गुरुद्वारा के ठीक सामने व्यास नदी के मध्य में आज भी विद्यमान है। उन्हीं ऋषि के नाम पर इस नगर का नाम माण्डव्य नगर रखा गया जो बाद में मण्डी नगर हो गया। यहाँ देवी देवताओं के अनेकों प्राचीन मंदिर हैं इसलिए इसे छोटी काशी भी कहते हैं। यहाँ से कुछ ही दूरी पर पराशर ऋषि का स्थान व सुन्दर झील है तो दूसरी ओर श्री लोमस ऋषि का रिवससर नाम से पवित्र स्थान व बहुत बड़ी झील है जिसकी गहराई आज तक कोई नहीं माप सका। यही कारण रहा होगा कि हमारे आराध्य प्रातः स्मरणीय पूज्य महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने यहाँ व यहाँ के निकटवर्ती इन पवित्र स्थानों में पधारने की अनुकम्पा की है, और शायद यही कारण रहा होगा जो हमारे आपके सद् गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने भी कई बार यहाँ आकर इस नगरी की पवित्रता में वृद्धि की है एवं यहाँ के कई बच्चों को अपनी चरण–शरण में लेकर कृतार्थ किया है। यह उनकी ही करुणा कृपा है जिसके कारण कई बच्चों की ध्यान स्थिति अच्छी चल रही है।

उनके इन्हीं बच्चों में से एक श्री गुणप्रकाश शर्मा हैं जो वर्ष 2005 में केन्द्र सरकार के अधीन सैनिक बोर्ड से लेखा अधिकारी के पद से सेवा निवृत्त हुए हैं। सेवा निवृति के बाद भी वे समाज सेवा में लगे हुए हैं और कई समाज सुधार संस्थाओं से जुड़े हैं जिनमें ब्राह्मण सुधार सभा, वरिष्ठ नागरिक कौंसल, माता भीमा काली ट्रस्ट प्रमुख हैं। ब्राह्मण सुधार सभा के अध्यक्ष तो कई वर्षों से हैं। सद्गुरु कृपा से उनकी ध्यान स्थिति भी अच्छी है यद्यपि इसके बारे में वे कुछ भी बतलाने से कतराते हैं। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने संक्षेप में जो बतलाया वह इस प्रकार है–

मेरा जन्म वर्ष 1945 का है। मेरे जन्म के पश्चात जो जन्म पत्रिका बनाई गई उसमें विद्वान ज्योतिषी ने तभी लिख दिया कि इस बालक को बहुत ऊँची श्रेणी के योगी गुरुदेव प्राप्त होंगे जो समय पर इसकी रक्षा करते रहेंगे। पता नहीं कैसे बचपन से ही मेरे मन में यह विचार आता था कि मैं कौन हूँ और इस संसार में किसलिए आया हूँ। पुस्तकों में गुरु नानक देव इत्यादि महापुरुषों के बारे में पढ़ता तो सोचता कि मेरे भी गुरु होंगे लेकिन वे साधारण पुरुष नहीं होंगे। उनकी लम्बी–लम्बी जटाएं होंगी जो ऊँचे पर्वतों पर रहने वाले योगी होंगे एवं ऋषिकेश, आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों में ही केवल उनका आना होगा, यहाँ वहाँ हर कहीं नहीं। यह मेरे बालपन के विचार थे। समय बीतने के साथ – साथ यह जानने की उत्सुकता बढ़ती रही कि मैं

किस प्रयोजन से इस संसार में आया हूँ किन्तु प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। कॉलेज के दिनों में कुछ कठिन पढ़ाई व अन्य कारणों से इस सोच में विराम सा लग गया किन्तु विवाह के बाद फिर यही प्रश्न मन में उठता। मैं परेशान सा रहने लगा। मेरी धर्मपत्नि अच्छे विचारों वाली धार्मिक स्त्री थी। वह प्रायः कहती कि आपकी परेशानी तभी दूर होगी जब आपको योग्य सद्गुरुदेव की प्राप्ति होगी। किन्तु उनकी शरण कब मिलेगी, कोई नहीं जानता था।

यह वर्ष 1979 की बात है। इन दिनों मैं मण्डी कार्यालय में ही कार्यरत था। इसलिए लगभग प्रतिदिन श्री बेसर राम शर्मा से उनकी दुकान में मुलाकात हो जाती थी। वे अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के शिष्य थे और उनके अन्य गुरुभाई भी उनकी दुकान में आते रहते थे व प्रायः अपने गुरुदेव की चर्चा करते रहते थे। मैं उनकी बातें सुनता रहता किन्तु मन में यह कभी नहीं आया कि मुझे भी उनकी चरण शरण ग्रहण करनी चाहिए। एक दिन गुरुदेव के पुराने शिष्य श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा उनकी दुकान में आए और बताया कि सद्गुरुदेव महाराज का कार्यक्रम अक्टूबर माह में मण्डी के लिए निश्चित हुआ है और मुझे देखकर कहा कि इस बार तुम भी दीक्षा ले लेना। मैंने कहा कि अभी मेरा मन गुरुधारणा के लिए प्रेरित नहीं हो रहा है फिर कभी देखा जाएगा। मन में यह भी विचार चल रहा था कि ये कैसे गुरु हैं जो यहाँ वहाँ आते जाते रहते हैं। उन्हें तो ऊँचे हिमालय में होना चाहिए आदि। किन्तु श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा (जो अब इस दुनियाँ में नहीं हैं) ने जोर देकर कहा कि इस बार तुम्हारी दीक्षा अवश्य होगी। गुरुदेव प्रातः साढ़े पांच बजे के आसपास दीक्षा देना प्रारम्भ करते हैं तुम नियत समय पर आ जाना। पहली दीक्षा तुम्हारी ही होगी। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु मन में सोचने लगा कि मैं प्रातः सात बजे से पहले उठता ही नहीं और दूसरे मेरे मन में दीक्षा लेने का कोई विचार ही नहीं है, दीक्षा कैसे हो जाएगी। मैंने अपनी धर्मपत्नी से भी बहुत हल्के में यह बात कही ! उसने भी मुख से कुछ नहीं कहा किन्तु दूसरे दिन दीक्षा के लिए आवश्यक सामान धोती, लोटा, मेवे इत्यादि चुपचाप मुझे बिना बताए घर में ले आई।

25 अक्टूबर 1979 को पता चला कि आज गुरुदेव जी का आगमन मण्डी में हो गया है और वे दूसरे दिन से ही दीक्षाएं देना प्रारम्भ कर देंगे। इस सूचना को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दिया और प्रतिदिन की तरह सो गया। रात्रि को स्वप्न में देखा कि स्वर्णिम लालिमा लिए सूर्य का उदय हो रहा है और धीरे – धीरे वह स्वर्णिम प्रकाश सारे आकाश में छा गया। थोड़ी देर में ही यह स्वप्न टूट गया। मैं पुनः सो गया। अचानक एक मधुर आवाज सुनाई दी " लल्ला उठ जाओ। " मैं चौंककर उठ बैठा कि यह किसकी आवाज थी। सब सो रहे थे। मन का वहम मानकर मैं फिर सो गया। थोड़ी देर बाद फिर वही आवाज सुनाई दी " लल्ला अब उठ जाओ। " मैं फिर से उठा, इधर उधर देखा, कोई नहीं था। घड़ी में वक्त देखा 03.30 बज रहे थे। सात बजे से पहले मेरा उठना नहीं होता था अतः फिर से सो गया। उस समय पाँच बज रहे होंगे जब पुनः वही आवाज किन्तु इस बार किंचित क्रोध से भरी हुई, सुनाई दी " लल्ला मैं तुम्हें कब

से जगा रहा हूँ, तु उठते क्यों नहीं ? " इस बार और अवहेलना नहीं कर सका। समझ गया गुरुदेव ही मुझे बुला रहे हैं। मैं दैनिक क्रियाओं से निपटकर स्नानादि के पश्चात जब तैयार हुआ, छः बज चुके थे। सामान धर्मपत्नि ने पहले से ही ला रखा था उसे लेकर पैदल ही जब गुरुदेव के कार्यक्रम स्थल (जेलरोड श्री हरिसिंह जी का आवास) पर पहुँचा 7 बजे रहे थे। दीक्षा हेतु लम्बी लाइन लगी थी। अभी दीक्षाएँ शुरू नहीं हुई थी। मैं भी लाइन में सबसे अन्त में खड़ा हो गया, सोच रहा था पता नहीं मेरा नम्बर आएगा भी या नहीं। किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब हमारी गुरु बहिन उमा शर्मा, जो महाराज जी के साथ ही मंडी आई थी, की आवाज सुनाई दी कि जो सबसे पीछे खड़ा है वह आगे आ जाए। पहली दीक्षा उसकी ही होगी। (मुझे तुरन्त श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा की याद आ गई जिन्होंने कहा था कि पहली दीक्षा तुम्हारी ही होगी। सद् गुरुदेव अपने बच्चों के मुख से निकली हुई किसी बात को तुरन्त पूरा करते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया।)

मैं लपककर आगे खड़ा हो गया एवं सद्गुरुदेव के कक्ष में प्रविष्ट हुआ। गुरुदेव की सौम्य मूर्ति का यह प्रथम दर्शन था। पता नहीं क्या हुआ मानों मेरा हृदय ही उमड़ आया आँखें आंसुओं से भर गई। अश्रुपुरित नेत्रों से ही मैंने उनके दर्शन किए और उनके चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने कृपा पूर्वक मुझे उठाया, मंत्र दिया और बाहर के कक्ष में ध्यान में बैठने का आदेश दिया। मैं उठकर बाहर आया और मंत्र जाप करने लगा। मंत्र जाप करते – करते पता ही नहीं चला कि कब शून्य अवस्था में मेरा ध्यान लग गया और लगभग तीन घंटे तक मैं ध्यान में बैठा रहा। गुरुदेव के स्वरूप के बारे में मेरी जो धारणाएँ थी, सबका समाधान स्वतः ही हो गया। समय का पता ही नहीं चला। ऐसी स्थिति लगभग तीन माह तक बनी रही। प्रातः काल लगभग तीन घंटे तक ध्यान चलता रहता। मन अत्यन्त प्रफुल्लित रहने लगा। किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रह पाई ।

वर्ष 1980 के प्रारम्भ से ही मुझे पीठ दर्द ने घेर लिया जिसने शीघ्र ही भयंकर रूप धारण कर लिया। ध्यान में बैठने की कौन कहे, कार्यालय तक पहुँचना भी दूभर हो गया। अस्पताल में चैक करवाया। डाक्टरों ने बताया कि रीढ़ ही हड्डी गल रही है जिसका इलाज यहाँ सम्भव नहीं। किसी बड़े अस्पताल में दिखाओ। मैंने गुरुदेव को अपनी बीमारी के बारे में पत्र लिखा, किन्तु कई दिनों तक कोई उत्तर नहीं आया। डाक्टरों की सलाह के मुताबिक दिल्ली के एक नामी अस्पताल में पहुँच तो गया किन्तु बिना किसी जान पहचान के कौन पूछता ? पहचान कोई नहीं थी, आर्थिक स्थिति भी वैसी नहीं थी। किन्तु गुरु कृपा से वहाँ एक डॉ. मिल गए जो अमेरिका से हाल ही में दिल्ली पहुँचे थे। वे मेरे बचपन के मित्र थे। पारिवारिक हाल चाल पूछने के बाद उन्होंने कुछ टैस्ट लिए। एक पैसा खर्च नहीं होने दिया। उन्होंने भी कहा कि रीढ़की हड्डी में विकार आ गया है। आप्रेशन ठीक नहीं रहेगा। दवाएँ लेने से ठीक हो जाएगा। मैं घर आ गया। कुछ दिन दवाइयों का सेवन किया किन्तु कोई आराम नहीं मिला। मैं चण्डीगढ़ P.G.I. गया।

वहाँ मेरे रिश्तेदार परिचित निकल आए। उन्होंने पूरी तरह चैक करवाया। वहाँ भी डाक्टरों ने वही परामर्श दिया कि दवाएँ लेते रहो। ठीक हो जाओगे। मैंने दवाएँ लेना फिर शुरू किया किन्तु कोई लाभ न हुआ। दर्द बढ़ता ही जाता था! फिर से गुरुदेव को पत्र लिखा कि कृपया बतलाएँ क्या मेरा अंतिम समय आ गया है? क्या मैं कभी ठीक भी हो पाऊँगा या नहीं, आप शीघ्र बतलाने की कृपा करें। ऐसे ही एक दिन लेटे – लेटे दिन में स्वपन में गुरुदेव महाराज के दर्शन हुए। मैंने उनसे स्वप्न में ही पूछा कि आप उत्तर क्यों नहीं देते हैं। दिन के तीन बज रहे थे जब दरवाजे पर call bell बज उठी। बाहर जाकर देखा तो डाकिया एक पार्सल लिए खड़ा था। खोला तो उसमें चार लड्डू और एक पत्र था। दो लड्डू मैंने खा लिए, एक एक लड्डू माता पिता को दे दिया। महाराज जी ने पत्र के उत्तर में लिखा " लल्ला तुम बिल्कुल न घबराओ । अभी तुमने बहुत कार्य करने हैं। तुम्हारा इलाज चण्डीगढ़ में ही होगा, वहाँ चले जाओ।"

उनकी आज्ञानुसार मैं चण्डीगढ़ P.G.I. चला गया। वहाँ इलाज करवाता रहा। रीढ़ की हड्डी गल गई थी। आप्रेशन सम्भव नहीं था अत: दवाईयों से ही काम चल रहा था। बीच – बीच में जब दर्द असह्य हो जाता तो कई बार सद्गुरुदेव महाराज को सशरीर अपनी चारपाई पर देखता जो मुझे कहते " लल्ला घबराओ नहीं, पूर्व जन्म के कर्मों का भुगतान हो रहा है। शीघ्र ठीक हो जाओगे "। चलना फिरना तो दूर बैठना भी दूभर था। तीन महीने के बाद चलने फिरने के योग्य हो पाया। इस सारी अवधि का वेतन मुझे घर में लाकर दिया जाता रहा। गुरुदेव की कृपा से विभाग की ओर से पूरा सहयोग मिल रहा था। स्वास्थ्य भी धीरे – धीरे उत्तम होता गया। यह उनकी ही अपार कृपा का फल है जो आज मैं ठीक प्रकार से चल फिर रहा हूँ और उचित तरीके से जीवनयापन कर पा रहा हूँ, अन्यथा मैंने तो जीवन की आशा ही छोड़ दी थी। जिन दिनों मुझे असह्य दर्द उठता था, मुझे प्राय: स्वप्न आता कि मैं एक विशाल चट्टान पर लेटा हूँ जो ढलानदार है। नीचे गहरा पानी है जिसमें दीर्घ काय मगरमच्छ आ जा रहे हैं और कई बार उछल उछल कर मुझ तक पहुंचने की चेष्टा कर रहे हैं मैं पानी में गिरने वाला ही होता कि मेरे सामने एक चित्र आ जाता जो धीरे – धीरे महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चित्र में परिवर्तित हो जाता और निकट आ रहे मगरमच्छ दूर हट जाते। इस प्रकार के स्वप्न कई बार आते। आज सोचता हूँ यह उनकी महान कृपा थी जिसके कारण मुझे जीवन दान मिल रहा था।

आज उन्हीं की कृपा से मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गए हैं। सेवा निवृत्ति के बाद मैंने व अपनी धर्मपत्नी की संचित राशि एक बैंक में जमा कराई थी। बैंक कर्मचारियों की अकुशलता व कुप्रबन्ध के कारण बैंक दिवालिया घोषित हो गया। हमारी जीवन भर की पूंजी डूब गई। ऐसे में सद् गुरुदेव महाराज से विनम्र निवेदन किया। चमत्कार हो गया। दिवालिया घोषित बैंक पुन: पटरी पर आता गया और हमारा सारा पैसा ब्याज सहित वापिस मिल गया। ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं जिनके द्वारा सद्गुरुदेव महाराज ने अपनी अनुकम्पा का प्रत्यक्ष अनुभव कराया है।

ऐसे ही एक बार ध्यान में मुझे गुरुदेव महाराज के दर्शन हुए। मेरी ओर इशारा करते हुए कहने लगे यह संसार शक्ति से ही परिचालित होता है शक्ति का बहुत महत्व है। यहाँ तक कि अष्टांग योग भी शक्ति से ही सिद्ध होता है। इसके बाद देखा कि एक शिला पर बहुत से साधु झोंपड़ी बना कर रह रहे हैं। उनमें से एक साधु उठा और मुझसे कहने लगा " **बच्चा देवी माँ के दर्शन करोगे ?** " मैंने कहा " **हाँ महाराज दर्शन करा दो** "। आवाज आई " **आँखें बन्द कर मेरी ओर आ जाओ।** " मैं दो चार कदम ही गया हूँगा कि फिर आवाज आई " **अब आँखें खोल दो** "। मैंने आँखें खोली तो क्या देखता हूँ चारों ओर चमकीला प्रकाश फैल रहा है। माँ के दर्शन तो न हुए शायद मेरे संस्कार इतने उज्जवल नहीं थे कि दर्शन कर पाता । हाँ उस चमकीले प्रकाश के भीतर मैंने अपने आपको देखा। धीरे – धीरे प्रकाश इतना तीव्र हो गया कि मेरी आँखें चुंधियां गई और बन्द हो गई। इसके पश्चात ध्यान खुल गया

✦ ✦ ✦

यह कुछ निजि अनुभव श्री गुणप्रकाश जी ने आग्रह करने पर बतलाए। निश्चय ही सद्गुरुदेव महाराज अपने सभी बच्चों पर कृपा करते हैं और कई प्रकार से अपनी सार्व भौमिकता का अनुभव कराते हैं। हमारे अपने निकृष्ट कर्मों के कारण हम पर आई विपत्तियों का निराकरण करते रहते हैं। इसके एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। हम सभी निश्चय ही बड़भागी हैं जो ऐसे पूर्ण सिद्धयोगी सद्गुरुदेव की चरण शरण हमें मिली है। आइए अत्यन्त विनय पूर्वक व भक्ति भाव से उनके चरण कमलों की वन्दना और गुणगान करें –

गुरुदेव जय जय

सद्गुरु जय जय

अखण्ड ज्योति प्रभु

रामलाल जय जय

आहार के मामले में सावधानी बरतें- सतोगुणी आहार लिया जाए

– श्री दिनेश चन्द

आहार स्वास्थ्य के लिए ही नहीं वरन आत्म विकास, दीर्घ जीवन और मनोबल की प्राप्ति का भी साधन है। आहार से जीवन की प्रत्येक गतिविधि प्रभावित होती है। आहार की शुद्धता पर ध्यान अवश्य दिया जाना चाहिए।

आध्यात्मिक उन्नति केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही निर्भर नहीं है, मानसिक और बौद्धिक स्वास्थ्य भी आवश्यक है। मानसिक अथवा बौद्धिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध भी भोजन से गहराई के साथ जुड़ा हुआ है। अन्न के अनुसार ही मनुष्य का मन बनता है। शास्त्रों में आहार के मामले में सावधानी बरतने पर बल दिया गया है, जिससे वह अपनी अन्तिम एवं सूक्ष्म अवस्था में पहुँचकर मनुष्य के अन्त:करण में सात्विकता तथा सद् प्रवृत्तियों का ही निर्माण करे।

मनुष्य की जिह्वा को बहुत प्रबल कहा गया है। जिसने इस पर नियन्त्रण कर लिया तो मानो उसने आत्म कल्याण के सूत्र को पा लिया। भोजन का मुख्य उद्देश्य शरीर तथा आत्म कल्याण की दिशा में अग्रसर करना है न कि जीभ की स्वाद लिप्सा को तृप्त करना।

अधिकांश लोग स्वादेन्द्रिय एवं पेट को ही तृप्त करने के लिए भोजन करते हैं। क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए इस पर विचार ही नहीं करते हैं। स्वास्थ के दृष्टि कोण से बासी, सड़ी–गली सब्जी–फल और अधिक तली–भुनी वस्तुओं का प्रयोग निषेध किया गया है। भोजन में विटामिन्स व पोषक तत्वों का होना आवश्यक है। विटामिन 'ए ' पालक, गोभी, मूली, गाजर, सलाद आदि शाकों में विशेष रूप से पाया जाता है। इन शाकों को खाने से ज्ञान तन्तुओं के साथ आँख, आंतों, फेफड़ों, तथा मूत्राशय को लाभ होता है।

विटामिन बी भूख बढ़ाने, शरीर को सक्रियता देनें, मांस पेशियों, स्नायुओं, त्वचा तथा समग्र शरीर संस्थान को स्वस्थ एवं स्निग्ध रखने में सहायक होता है। यह फलों, हरी सब्जियों, गेहूं, जौ, मक्का, मटर , चने आदि में पाया जाता है।

विटामिन सी पाचन संस्थान को शक्ति और सक्रियता देता है। इसकी कमी से शरीर में निर्बलता, मसूड़ों व दांतों में विकार पैदा होते हैं। यह नीबू, नारंगी, टमाटर, रसभरी आदि रस और सूक्ष्म अम्ल वाले फलों, मूली, गाजर, पालक आदि में पाया जाता है। इनके अलावा विटामिन–डी और ई भी स्वास्थ्य रक्षा के दृष्टिकोण से आवश्यक माने जाते हैं। स्वास्थदायक क्षार जैसे कैल्सियम, आयरन, मेगनीशियम, आदि शरीर संस्थान को सबल एवं सुदृढ़ बनाने

का कार्य करते हैं। मनुष्य के लिए भोजन में हरे शाक–सब्जियाँ, फल, दूध, मेवा, आदि तथा चोंकर सहित अन्न लाभदायक है।

जिस प्रकार आमाशय से निकलने वाले रस भोजन को पचाते हैं उसी प्रकार मुंह से निकलने वाले रसों का भी पाचन में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। भोजन को बिना पूरी तरह चबाये जल्दी – जल्दी ग्रास नहीं निगलना चाहिए। जल्दी में निगले हुए ग्रास मुँह से स्रवित होने वाले रसों का पूरी तरह मिश्रण न होने के कारण पचने में देर लगती है। भोजन तो क्या पानी भी धीरे–धीरे घूँट – घूँट कर पीना चाहिए। जिससे उसमें भी मुंह के पाचक रस मिल जायें। भोजन के साथ कम पानी पीना चाहिए। एक घण्टे बाद पानी पीना ठीक रहता है। चौबीस घण्टे में कम से कम तीन लीटर पानी जरूर पी लेना चाहिए।

पुरानी कहावत है कि आधा पेट भोजन से, चौथाई जल से और एक चौथाई हवा आने जाने के लिए खाली रखना चाहिए। स्वाद, आदत या सत्कार के बहाने बार–बार मुँह चलाने की पद्यति ठीक नही है।

अन्न हमारा जीवन है, प्राण है, उसके प्रति औषधि जैसी श्रद्धा और प्रसाद जैसी भावना रहनी चाहिए। हमें अपने आहार का चुनाव उसके गुणों के आधार पर करना चाहिए, स्वाद के आधार पर नहीं। खाते समय मन प्रसन्न, शान्त और उत्साहित रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में पाचन तंत्र ठीक काम करते हैं और आहार का समुचित लाभ प्राप्त होता है।

खाद्य पदार्थों में कुछ वस्तुएँ जल्दी और कुछ देर से पचने वाली होती हैं। मेवा, मिठाई, हलुआ, रबड़ी जैसे पदार्थ पचने में देर लगती है; जबकि शाक, छाछ, फल जल्दी पच जाते हैं। आमाशय और आँतों में भी उनकी क्रियाएँ भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं। यदि इन सबको इकट्ठा कर दिया जाये तो कुछ जल्दी पकेगीं और कुछ देर लगा लेंगी। इन आधी कच्ची और आधी पक्की प्रक्रिया से रस भी आधे पके ही बनेंगे। एक समय में समान परिपाक वाली वस्तुएँ लेनी चाहिए, ताकि पचने में सुविधा रहे।

आहार सम्बन्धी छोटी बातों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। भोजन सम्बन्धी आदतें बिगड़ने से पेट खराब होता है और बीमारी–कमजोरी घेर लेती है। भूख भी खुलकर लगनी चाहिए। इससे पाचन क्रिया भी सशक्त होती। भोजन से शक्ति और तृप्ति मिलेगी।

उपनिषदों में साधक को सतोगुणी आहार ही अपनाने पर बल दिया गया है। मन अन्न–मय है, प्राण जलमय और वाक तेजोमय है। आहार शुद्ध होने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्ध होने से भावना दृढ हो जाती है और भावना की स्थिरता से हृदय की समस्त गाँठें खुल जाती हैं।

पाशुपति ब्रह्मोपनिषद में कहा है कि आहार में अभक्ष्य त्याग देने से चित्त शुद्ध हो जाता है। आहार शुद्धि से चित्त की शुद्धि स्वयमेव हो जाती है। जब चित्त शुद्ध हो जाता है तो क्रम से ज्ञान होता जाता है और अज्ञान की ग्रन्थियाँ टूटती जाती हैं।

धर्म ग्रन्थों में आहार की शुद्धता पर बल दिया गया है। आहार की शुद्धता पर ध्यान रखना चाहिए। इससे स्वस्थ शरीर और दीर्घ जीवन के साथ आत्म विकास में सहायता मिलती है।

प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पैरों तले रेंगते रहने वाले क्षुद्र कीट से लेकर महत्तम और उच्चतम साधु तक में वह अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता और सभी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद हैं। भेद केवल अभिव्यक्ति की न्यूनाधिक मात्रा में है। कीट में उस महाशक्ति का थोड़ा ही विकास पाया जाता है, तुममें उससे अधिक और किसी दूसरे देवोपम पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है; भेद बस इतना ही है, परन्तु है सभी में वही एक शक्ति।

पतंजलि कहते हैं –'ततः क्षेत्रिकवत्' (4/3)। किसान जिस तरह अपने खेत में पानी भरता है। किसी जलाशय के वेग से खेत के बह जाने के भय से उसने नाली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की जरूरत पड़ती है, तब द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी आने के वेग को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि वह जलाशय के जल में पहले से ही विद्यमान है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता, अनन्त सत्ता, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द का भण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार – यही देहरूपी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

– स्वामी विवेकानन्द

तेरे द्वारे आया प्रभू जी

– जगदीश राए बंसल " अधम "

तेरे द्वारे आया प्रभू जी, आया तेरे द्वार।
जन्म–जन्म का मैं अपराधी, कर दीजो उद्धार।।

गंगा नहाया ना जमुना नहाया
ना नहाया हरिद्वार,
त्रिशूल पै बसा दो प्रभू जी
संवाई में हरिद्वार

तेरे द्वारे ....(1)

मथुरा देखी ना काशी देखी
ना देखी सरयु धार
जटाओं से बहा दो प्रभू जी
त्रिवेणी की धार

तेरे द्वारे ....(2)

बंसरी बजाई ना बीणा बजाई
ना बजाई इकतार
डम डम बजा दो प्रभू जी
डमरू की आवाज

तेरे द्वारे ....(3)

माला घुमाई ना धूली रमाई
ना तपाई अंगार
मन के मनके चला दो प्रभू जी
अधम को दरकार

तेरे द्वारे ....(4)

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रबन्धन सूत्र

– डॉ. राजकुमारी त्रिखा

कुशल प्रबन्धक के गुण :-

कुशल प्रबन्धक को कभी भी कर्मचारियों का उत्साह भंग नहीं करना होने देना चाहिये। वह सदैव पक्षपात रहित होकर, उनके कार्यों का निरीक्षण करे। किसी के भी प्रति, घृणा अथवा प्रेम का भाव न रखे। गीता का सन्देश है –

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिता : समदर्शिन : ।। श्रीमद् 5.18

और भी कहा है –

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्य बन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।। श्रीमद् 6.9

रागद्वेषरहित, स्थिरबुद्धि वाला प्रबन्धक ही निन्दा, चुगली, सुनी सुनाई बातों से प्रभावित नहीं होता। अन्यथा तो चापलूसों की निन्दा चुगली सुनी सुनाई बातों से प्रभावित नहीं होता। कर अधिकारियों की मनोवृत्ति निन्दित व्यक्ति के प्रतिकूल तथा विरुद्ध हो जाती है। वे निन्द्यमान कर्मचारी के प्रति दुर्भावना रखने लगते हैं, और उसके प्रति अनुचित व्यवहार द्वारा उसके अहं को आहत करते हैं। तब वह व्यक्ति अपने किये उत्कृष्ट कार्य की प्रशंसा न पाकर, हतोत्साहित हो जाता है तथा मन लगा कर कार्य नहीं करता। इससे संस्था की बड़ी हानि होती है।

अत: एक अच्छे प्रबन्धक को तटस्थ भाव से अपने कर्मचारियों पर निगाह रखनी चाहिए। उनके कार्य की उत्कृष्टता तथा मात्रा का मूल्यांकन करते हुए, आवश्यकतानुसार व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार पक्षपातरहित व्यवहार से प्रबन्धक अपने कर्मचारी वर्ग का हृदय जीत लेता है। गीता कहती है –

समोऽहं सर्वभूतेषु, न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय:।
ये भजन्ति मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।। श्रीमद् 9.29

जब कर्मचारी अपने प्रबन्धक से प्रेम करने लगते हैं, तो वे उसकी सब बातें मानने लगते हैं अपनी बात को दूसरों से सहर्ष मनवा लेने की क्षमता, एक कुशल प्रबन्धक तथा नेता का आवश्यक गुण है। परन्तु एक अच्छा और नेक इन्सान ही अच्छा प्रबन्धक बन सकता है। यदि प्रबन्धक स्वंय कामचोर, आलसी, अभिमानी और लोभी हो, तो उसके कर्मचारी उसकी सिखाई हुई निष्काम कर्म की नीति पर कभी नहीं चलेंगे। अत: प्रबन्धक को श्रीकृष्ण के समान गुणवान बनना होगा, तभी कर्मचारी अर्जुन के समान कर्मक्षेत्र में सक्रिय तथा सफल होंगे। जिस प्रकार

का व्यवहार, कर्मचारियों से अपेक्षित तथा अभीष्ट हो, प्रबन्धक को स्वयं वैसा ही व्यवहार तथा कर्म करना चाहिये। सामान्य प्रवृत्ति होती है कि साधारण लोग, श्रेष्ठ जनों के आचरण का अनुकरण करते हैं। गीता में कहा है –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ।। श्रीमद् 3.21

अतः प्रबन्धक का कर्तव्य है कि वह स्वयं एक आदर्श व्यक्ति का उदाहरण स्थपित करे। उसकी बुद्धि समदर्शी, निष्पक्ष और राग द्वेष रहित हो। वह स्वयं फल की इच्छा त्याग कर, कर्म करे, उसका अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो। उसमें स्वयं को श्रेष्ठ समझने का अभिमान, दम्भ, हिंसा आदि नकारात्मक भाव नहीं होने चाहिये। क्षमा, मन व वाणी की सरलता, श्रद्धासहित गुरु की सेवा, शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, स्त्रीपुत्र स्वर्गीय सुखादि में आसक्ति का अभाव, अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में मन की स्थिरता, ईश्वर की भक्ति तथा विषयगामी पुरुषों की संगति का त्याग करने का स्वभाव – ये किसी भी मनुष्य के श्रेष्ठ गुण होते हैं, तथा प्रबन्धक भी इन्हें अपना कर एक मिसाल कायम करे। गीता के 13 वें अध्याय के 7 वें से लेकर 10 वें श्लोक तक इन गुणों का ज्ञानी के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है, जो श्रेष्ठ प्रबन्धक के लिये भी प्रासंगिक व सार्थक हैं। इन गुणों से सम्पन्न प्रबन्धक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के लिये प्रेरणास्त्रोत बन जाता है।

निश्चय की इस प्रकार का चरित्र, तथा जीवन शैली अपनाना तलवार की धार पर चलने के समान है। शारीरिक, मानसिक, तथा चारित्रिक दृष्टि से शक्तिशाली मनुष्य ही इस मार्ग पर सफलता पा सकता है। इस प्रक्रिया में उसे अनेक अवांछित परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। अनेक प्रकार के दबाव व तनाव झेलने पड़ते हैं। अतः गीता ने प्रत्येक परिस्थिति में मानसिक सन्तुलन बनाये रखने के लिये आत्मसंयमयोग का सशक्त तथा महत्त्वपूर्ण परामर्श दिया है। योग तथा ध्यान साधना से शरीर तथा मन बलवान् बनता है। योगमार्ग का पथिक सन्तुलित मात्रा में भोजन तथा निद्रा का सेवन करे। उसका प्रत्येक कर्म संतुलित हो। तब उसमें आत्मविश्वास आयेगा, अनुकूल प्रतिकूल प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति का सामना करने की शक्ति आयेगी। कभी संकट आ पड़े, तो वह समस्या का समाधान करने के लिये किसी और की सहायता की अपेक्षा, स्वयं पर ही भरोसा करके, उसे सुलझाने का प्रयास करेगा, क्योंकि उसे ज्ञात है –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

उसकी समचित्तता से उसे बहुत सहायता मिलेगी। इच्छा, राग, द्वेष, लोभ, मोह, अपूर्ण इच्छाओं के कारण उत्पन्न क्रोध ही विषम मानसिक सन्तुलन के मूलकारण हैं। ध्यानाभ्यास तथा योग द्वारा व्यक्ति का मन शान्त होता है, तथा उसे आत्मिक सुख मिलता है। उसका मन सन्तुलित रहता है। गीता कहती है –

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।। श्रीमद् .6.21

तब मन में उठती हुई इच्छाएं , उस के मन में तत्काल विलीन हो जाती है, तथा आवेश उत्पन्न नहीं करतीं, जिस प्रकार सागर में लहरें उठती गिरती रहती है, परन्तु सागर को उद्वेलित नहीं करतीं।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत।
तद्वत् कामाः यं प्रविशन्ति सर्वे, स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। श्रीमद् .2.70

किसी कार्य के बिगड़ जाने पर, अथवा अभीष्ट परिणाम न मिलने पर भी वह क्रोधित अथवा दुःखी नहीं होगा। उसे ज्ञात है कि किसी कार्य को रकने के पाँच कारण होते हैं – अधिष्ठान अर्थात – आश्रयदाता संस्था प्रमुख, कर्ता, करण अर्थात मशीन आदि सहायक साधन, विविध चेष्टाएँ तथा दैव जो सदा अनिश्चित होता है। गीता कहती है –

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणञ्च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टाः दैवं चैवात्र पंचमम्।। श्रीमद् 18.14

इनमें से पहले चारों तत्त्वों के होने पर भी यदि भाग्य में असफलता लिखी है, तो वह मिलेगी ही। उस पर किसी का वश नहीं। अतः कार्य में असफलता मिलने पर भी वह अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोता।

पूँजी जुटाना तथा बचत:-

मानवसंसाधन प्रबन्ध के अतिरिक्त पूँजी जुटाना, बचत को प्रोत्साहन देना तथा उपभोक्ताओं की रुचि का ध्यान रखना भी प्रबन्धक का ही दायित्व है। आदर्श प्रबन्धक दैनिक खर्चों में कटौती करके बचत का सम्बर्धन करता है। बचत से प्राप्त धन भी एक तरह से अतिरिक्त आय ही होती है। कहा गया है- MONEY SAVED IS MONEY EARNED वह कामनाओं की पूर्ति पर, सुखोपभोग पर नियन्त्रण करता है, क्योंकि सुखों, तथा विषयभोगों पर अधिक व्यय धन का अपव्यय है। उस धन को बचा कर पूँजी बढ़ाना और उससे व्यवसाय का विस्तार करना उसे अभीष्ट होता है। इसका कारण है कि अग्नि में घी की आहुति डालने पर तेज भड़कने वाली अग्नि के समान, कामनाओं की अग्नि भी कामपूर्ति की आहुति से और भड़कती जाती है। गीता कामनाओं को ' दुष्पूरम् ' बताती हुई कहती है-

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः। श्रीमद् .16.10

यदि मनुष्य सुखों के पीछे दौड़ता रहे तो उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है। गीता कहती है –

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।। श्रीमद् .2.67

इस प्रकार गीता भोगों पर धन न व्यय करने की शिक्षा देती है। इसी धन का सदुपयोग करके एक कुशल प्रबन्धक, व्यवसाय को बढ़ा सकता है, तथा देश की आर्थिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इस प्रकार, नियोजन, अभिप्रेरणा, मानवसंसाधन प्रबन्ध, पूँजी, बचत आदि से सम्बन्धित उपयोगी सूत्र गीता में मिलते हैं।

संस्थागत कर्मचारियों के लिये उपयोगी सूत्र :-

व्यवसाय तन्त्र, का तीसरा स्तर संस्था में कार्यरत कर्मचारी हैं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता कर्मचारियों को भी बहुमूल्य परामर्श देती है। गीता कहती है – अनासक्त भाव से कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो। अपना कार्य सोच समझ कर, परिश्रम से, निष्ठापूर्वक पूर्ण शक्ति के साथ करो। कर्म करना ही मनुष्य के हाथ में है, उसका फल पाना नहीं। (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन) निष्काम भाव से किया गया कार्य उत्कृष्ट कोटि का होता है। यदि कार्य करते समय मन उस कार्य के फल की कल्पना में लीन हो जायेगा, तो कर्ता की ऊर्जा दो धाराओं में बहने लगेगी, 1. कार्य करने में, 2. फल की चिन्ता में। आधी चेतना तथा शक्ति से किया गया कार्य कभी उत्कृष्ट कोटि का नहीं हो सकता। अतः सदैव पूर्ण एकाग्रता से ही कार्य करना चाहिये। गीता कहती है – फलासक्ति त्याग कर कार्य करने से परमपुरुष का दर्शन हो जाता है, मोक्ष मिलता है।

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष: ।। श्रीमद् 3.19

निष्कामभाव से, मन लगा कर कार्य करने से, वह कार्य समाप्त हो जायेगा, उससे छुटकारा – मोक्ष मिल जायेगा। मोक्ष की यह व्याख्या निष्काम कर्मयोग के सन्दर्भ में अधिक तर्क संगत प्रतीत होती है। यदि कार्य ठीक से नहीं किया गया, तो पुनः पुनः वही काम करना पड़ेगा अतः उत्कृष्ट कार्य के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति फला सक्ति त्याग कर कार्य करे। यदि कार्य अर्थात – उत्पादन श्रेष्ठ होगा तो फलस्वरूप बोनस, लाभांश भी अच्छा मिलेगा।

गीता कर्मचारियों के लिये एक अन्य महत्त्वपूर्ण सुझाव देती है, कि प्रत्येक कर्मचारी वही कार्य करे, जिसके लिये, उसे नियुक्त किया गया हो। दूसरे व्यक्ति की ड्यूटी करना खतरनाक है। अपना कार्य चाहे निकृष्ट ही क्यों न हो, वह पराये अच्छे कार्यों की अपेक्षा ज्यादा उत्तम है। गीता का सन्देश है –

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेय:, परधर्मो भयावह:।। श्रीमद् 3.45

अतः अपना कार्य निकृष्ट होने पर छोड़ना नहीं चाहिये

सहजं कर्म कौन्तेय।

सदोषमपि न त्यजेत्।। गीता 18.48

कभी – कभी दूसरों की ड्यूटी करने पर व्यक्ति महान संकट में फँस जाता है। अत: सदैव अपना कार्य ही करना चाहिये। यदि कभी अपना कार्य ठीक प्रकार से करना न आता हो, तो भी धैर्यपूर्वक अभ्यास करते रहो। अभ्यास करने से व्यक्ति उस कार्य को सीख जाता है।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान।।

गीता का भी यही संदेश है–

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। श्रीमद् 6.35

अभ्यास करते – करते कुछ समय बाद उसमें निपुणता प्राप्त हो जायेगी। गीता का कथन है–

कालेनात्मनि विन्दति। श्रीमद् 4.38

समत्व बुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, राग द्वेष का अभाव, ईमानदारी, परिश्रमशीलता, विनम्रता आदि सद्गुण, योगाभ्यास, ध्यानसाधना, युक्ताहारविहार ऐसे स्पृहणीय सद्गुण हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति का उत्कर्ष करते हैं, उसकी कार्यक्षमता बढ़ाते हैं। अत: व्यवसाय प्रबन्धन के तीनों स्तरों से सम्बन्धित व्यक्तियों को इन्हें अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लेना चाहिये। धर्मानुसार आचरण ही सुख का मूल है। कौटिल्य कहते हैं–

सुखस्य मूलं धर्म:। धर्मस्य मूलमर्थ:। अर्थस्य मूलं राज्यम्। राज्यस्य मूलमिन्द्रियविजय:। इन्द्रियजयस्य मूलं विनय:। विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा। वृद्धोपसेवाया: मूलं विज्ञानम्। विज्ञानेनात्मानं विन्देत् ।(कौटिल्य के अर्थसूत्र।–8)

निष्कर्ष :– सम्पूर्ण विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता में तीनों स्तरों के लिये उपयोगी प्रबन्धन, कार्यशैली, मानवसंसाधन प्रबन्ध, अभिप्रेरणा, नियोजन, निर्णयन, बचत तथा पूँजी आदि से सम्बन्धित बहुमूल्य सुझाव हैं। गीता में व्यक्तिगत तथा संस्थागत मूल्यों का प्रतिपादन पाया जाता है। इनके अनुसार व्यवहार करने से हड़ताल तालाबन्दी, मशीनों आदि संसाधनों का अनुपयोग, उत्पादन में कमी आदि परिस्थितियों पर नियन्त्रण किया जा सकता है। मानवसंसाधनों का समुचित प्रबन्धन भी उत्पादन दर मे वृद्धि करके देश की आर्थिक प्रगति में बहुमूल्य योगदान देगा। ये गीतोक्त प्रबन्धन सूत्र देश की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास की गति को बढ़ा सकते हैं।

• योग–आसन

स्वस्तीक आसन

प्रथम साधारण स्थिति में बैठ जाओ और अपने बायें पैर के पंजे को पकड़ करके पिंडली और जंघा के बीच में अपने दोनों पैरों के पंजों को दबायें और समकाय शिरोग्रीव हो करके दोनों हाथों को सिद्धासन की तरह दबा करके मेरुदण्ड को सीधा करके बैठ जायें और दृढ़ता से अभ्यास करें। स्वस्तीक आसन का फल भी सिद्धासन के समान ही है।

समय – सरलता पूर्वक 1 मिनट से आरम्भ करना चाहिए व धीरे–धीरे रोजाना 2–2 मिनट बढ़ाते हुए घण्टों तक ले जाना चाहिए।

लाभ – स्वस्तीक आसन ध्यानाभ्यास के लिये परम उपयोगी आसन है इस आसन में बैठने पर सुषुम्ना की गति अपने आप हो जाती है। मन की एकाग्रता स्वतः ही जागृत हो जाती है। यह सिद्धासन की अपेक्षा अधिक सरल है। इस आसन को गृहस्थी, विरक्त, संन्यासी, महात्मा, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ सभी सरलता से कर सकते हैं।

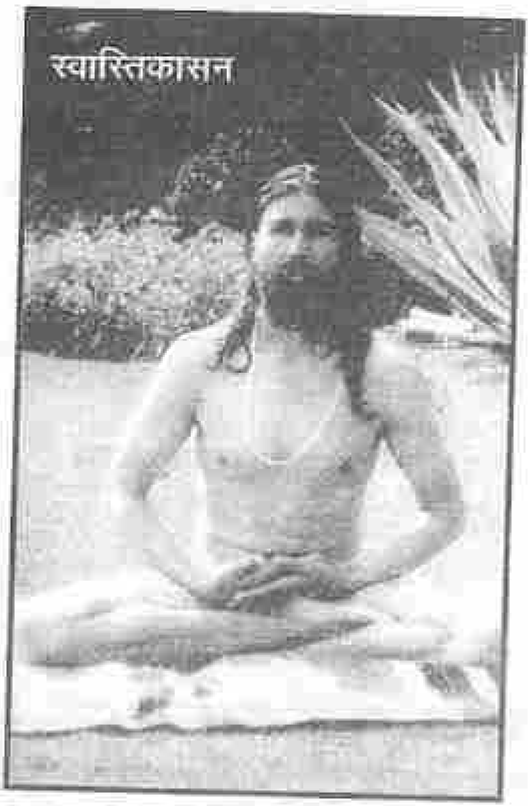

श्री सिद्धगुफा योग प्रचार मण्डल का आगामी कार्यक्रम

20 नवम्बर से 22 नवम्बर — उरकर बाबा इं. कॉलेज कालपी, जिला - जालौन

25 नवम्बर से 26 नवम्बर — भीमगौड़ा हरिद्वार कल्याण आश्रम इस्कॉन वाली गली में

27 नवम्बर से 29 नवम्बर — महाप्रभु रामलाल योगाश्रम जी. टी. रोड, घरौण्डा, करनाल

4 दिसम्बर से 6 दिसम्बर — दतिया C/o अनिल दुबे एवं नन्दन सिंह गुर्जर

7 दिसम्बर व 8 दिसम्बर — ग्वालियर C/o प्रदीप द्विवेदी | कुंज विहार गोला का मन्दिर के पास ग्वालियर

28 दिसम्बर से 1 जनवरी 2016 — गंगापुर सिटी, नृसिंह कॉलोनी राजस्थान

ये नैन मेरे देखें ....

— श्रीमती डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया, इन्दौर

ये नैन मेरे देखें वो डगर
गुरुधाम जहाँ से आये नजर
कुछ राहें मिले मन राम कहे
सुख धाम मेरा जीवन ये बने (ये नैन मेरे देखें .....)
वो योग शाला योगेश्वर की
करते हैं वहाँ तो ध्यान सभी
उस मूरत की, पारस जो बनी
करे पावन जो मन अंतर की (ये नैन मेरे देखें .....)
वो भक्ति अंचल श्रद्धास्थल
यमुना भी है, व्यापक विस्तृत
मधुसूदन की बातों को कहे
स्नेह मिले संस्कार बने (ये नैन मेरे देखें .....)
वो अग्नि बनी नेत्र ज्योति
नीर सी है उज्जवल निश्चछल
गगन समीर महि मंडल है
रज-चरणों की तो अमृत है (करें पावन जो मन .....)
खुश हाल चमन झूमे है गगन
लहराये धरा गाये है पवन
गुण गाथा को जगत्राता की
यशगान अमर गुण धाम अमर
कुछ राहें मिलें मन राम कहे
सुख धाम मेरा जीवन ये बने

मंत्र और हृदय

– श्री सत्य प्रकाश शर्मा

आध्यात्मिक ज्ञान के सानिध्य में पला–बढ़ा वह भारतीय समाज जो कभी सारी दुनियाँ में सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था वह समाज और उसमें रहने वाले लोग (योगी–भोगी) दोनों ही ज्ञान की गंगा में डुबकी लगाते हुए जीवन के उन हर क्षेत्र की ऊँचाइयों पर पहुँच गये थे जिसके लिए अन्य लोग ईर्ष्या करते, जहाँ पर असहाय रोग पीड़ा, शोक दुःख, प्रदूषण चाहे वह किसी भी प्रकार का था नाममात्र को छू तक नहीं गया था। हमारे आदि ऋषियों ने जीवन के हर क्षेत्र को परिलक्षित करते हुए उनकी सहज सुलभ खोजों तथा ग्रह–नक्षत्रों द्वारा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों से उनका अत्यन्त सुलभ उपायों द्वारा निदान कर, किसी भी प्रकार से प्रदूषित होने वाले समाज को यज्ञ अनुष्ठानों द्वारा दूषित होने से बचा, उपायों को बताया ताकि आज की तरह वह कष्टमय जीवन न जी सके। लेकिन आज के भारतीय समाज ने उन भारतीय परम्पराओं को, जो पूर्णतया आध्यात्मिक अनुबन्धों से परिपूर्ण थी, तोड़कर उस पाश्चात्य संस्कृति के भोगवाद को स्वीकारने लगा जिसके पीछे न कोई नियम था न संयम। केवल वह अनियमित, अश्लील काम–पूर्ण जीवन, जिसके रहते मनुष्य शोक, क्लीवता नीरसता, शारीरिक अक्षमताओं तथा प्रदूषित वातावरणों से घिरा हुआ उन नाना प्रकार की बीमारियों के आगोश में पहुँच गया जिनका भारतीय समाज कभी नाम भी नहीं जानता था, यही नहीं कि हम भारतीयों ने उस भोग–विलासपूर्ण जीवन को जिसमें पैसे की चमक–दमक सुरा–सुन्दरी का समावेश तथा कला राग की वह ऊँचाईयाँ जिनकी गूँज विश्व के सारे उन समाज में थी, को नहीं भोगा हो लेकिन उनको भी बड़े कलात्मक एवं संयमित ढंग से, आज की तरह नहीं जिसमें फूहड़ता के अलावा किसी भी प्रकार का कोई भविष्य न हो।

प्रत्येक व्यक्ति आज के इस प्रदूषण पूर्ण कोलाहलों अनियमित, असुरक्षित, असंतुलित खाद्य पदार्थों, रहन–सहन के स्तरों तथा प्रदूषित प्राणवायु (आक्सीजन) की कमी के कारण उन असाध्य रोगों से घिरता गया जो कभी आज से पहले पाश्चात्य देशों में होती थी। हम भी आज उन्हीं श्रेणी में आकर खड़े हो गये हैं। इसीलिए तो आज हृदय–घात, रक्तचाप, कैंसर, एड्स, गठिया, मधुमेह जैसी भयंकर असाध्य बीमारियाँ अब अमीरों के घर लाँघकर गरीबों के घर में घुस गयी हैं जिसके लिए आज की यह आधुनिक चिकित्सा पद्धति कुछ भी कर पाने में असहाय परिलक्षित होती है। सिवाय आधुनिक टेस्टों द्वारा बीमारियों को

निश्चित शल्य चिकित्सा देने में, पाश्चात्य चिकित्सों से भी अधिक निपुण होते जा रहे हैं लेकिन उन कारणों को जिनके कारण यह होती है शल्य क्रिया के पश्चात कैसे निश्चिंत एवं स्वस्थ रहें, को दूर नहीं कर पा रहे हैं। क्योंकि लाखों रुपये खर्च करने के बाद भी वह प्राणी तथा उसका परिवार यहाँ तक कि वह खुद आधुनिक चिकित्सक समाज, जिसको अपनी इन गवेषणाओं पर गर्व है – आश्वस्त नहीं। फिर क्या फायदा ऐसे निदानों तथा शल्य कार्यों का, जो थोड़ा बहुत जीवन भी निःसन्देह उसको न दे सके जिसका वह हकदार है। ऐसा नहीं कि हमारा आधुनिक चिकित्सक कम योग्य या अविश्वसनीय है उसका ज्ञान चूँकि केवल पाश्चात्य देशों के अन्धानुकरण के बीच में भ्रमित हो उसी शैली में अपने इस समाज की सेवा करना चाहता है, जबकि हम दोनों का रहन–सहन, आचार–विचार तथा खानपान बिल्कुल भिन्न है। हालांकि वह सब शिक्षा, जिसको हम पाश्चात्य कहते हैं प्राचीन में यह भारत की ही थी, लेकिन उसका परिवेश पूर्णतया भारतीय समाज की जरूरत के अनुसार था आज की तरह नहीं। आज जरूरत है उन आदि ऋषियों द्वारा रचित पांडुलिपियों के अध्ययन की जिसमें इन पाश्चात्य देशों के मनीषियों से आगे भी बहुत कुछ है और आज जो कुछ भी भौतिक शास्त्रियों द्वारा निरूपित ज्ञान के हमारे दर्शन शास्त्रों के अंशमात्र भी नहीं। जब तक आज का हमारा भौतिक शास्त्री हम भारतीयों के प्राचीन रहन–सहन, खान–पान, जलवायु तथा अनुवांशिकी पर और उन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक मान्यताओं के साथ अध्ययन नहीं करेगा जिसमें पहले वह पूर्ण पारंगत थे कभी भी सफल नहीं हो सकेगा। भारतीय परिवेश में रहकर ही अगर हमारे चिकित्सक इस आधुनिक पद्धति को अपनायेंगे तो उनको सुयश मिलेगा। इस पद्धति पर से आज विश्वास उठते जाने का प्रमुख कारण यह है कि वर्तमान में रोगी जिस रोग से पीड़ित होता है चिकित्सक केवल उसी का आपरेशन करने अथवा पीड़ा को कम करने में लग जाता है। सम्पूर्ण निदान में नहीं। उस रोग के मूल अथवा कारक रूप को जानने की कोशिश नहीं करता जैसे आप किसी का हृदय का आपरेशन कर देते हैं ठीक है तथा जिस कारण वह उत्पन्न हुआ उन कारकों पर ध्यान नहीं देते उसके आचार–विचार, रहन–सहन तथा खान–पान पर ध्यान नहीं देते।

इसी कारणवश सिद्धधाम संस्थान ने इस अहम विषय पर उन मूल कारणों के साथ जिस कारण यह असाध्य रोग दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, उन ऋषियों तथा दार्शनिकों के प्राचीन परिवेश को सामने रख जिस पर उन्होंने अपनी निरन्तर खोज कर गणनाएँ की थीं, कार्य करना शुरू कर दिया। यही नहीं, अब तो और भी बहुत अन्य लोग जो समाज को कुछ देना चाहते हैं, सोचना, तथा कार्य करना शुरू कर दिया है। इसी संदर्भ में आज मेरठ मेडिकल कॉलेज में मेडीसिन विभाग में पूर्व कार्यरत अध्यक्ष – डॉ. एस.एस.एल. श्रीवास्तव की पुस्तक " मिथ्स ऑफ मेडिकल–साइन्स" एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के लिए किसी

भूचाल से कम नहीं उन्होंने यह बताने की कोशिश की है कि वह आधुनिक चिकित्सक प्राकृतिक सिद्धान्तों को अनदेखा कर, जिसको मनुष्य जीता है, अपनी इस पद्धति पर दम्भ भरने वाले वह खुद स्वयं ही उन रोगों की चपेट में हैं। जिनके वह विशेषज्ञ कहलाते हैं ऐसा ही अब अन्य चिकित्सक भी जो अपोलो, एस्कार्ट इत्यादि संस्थानों में हृदय या अन्य बीमारियों का इलाज कर रहे हैं। योग, वैदिक नुस्खों, ऐरोमाथेरेपी, वैकल्पिक चिकित्सा तथा मंत्र-शक्ति के प्रयोगों के लिए विशेष जोर देने लगे हैं जो आज एक "समन्वय चिकित्सा पद्धति" की ओर इशारा करती है जिस पर हमारा प्रबुद्ध चिकित्सक वर्ग गम्भीरता से सोच रहा है। एक अन्य संगोष्ठी में " व्यक्तित्व विकास एवं विज्ञान " विषय पर प्रो. सी.पी. अत्रे ने कहा कि आज का बुद्धिमान एवं जागरूक चिकित्सक दवाओं से रोगों का पूर्ण इलाज करने में अक्षम है। अब आधुनिक चिकित्सा शास्त्र भी यह मानने लगा है कि व्यक्तित्व का विकास पूर्व के वैज्ञानिक तरीकों को अपनाकर ही किया जा सकता है तभी बहुत से रोगों द्वारा बचा जा सकता है। इन्होंने शरीर में स्थित चक्रों तथा मंत्र विशेषों के प्रति जानकारी दी और कहा कि मंत्रों द्वारा प्रस्फुटित होने वाली ऊर्जा के चक्रों में पैदा होने वाले हारमोन्स में हलचल पैदा की जा सकती है जिससे विजातीय तत्वों का विनाश हो, रोगों से छुटकारा पाया जा सके। इसी कारण प्राचीन में ऐसा कोई लेख या उदाहरण हमको उपलब्ध नहीं कि हमारा कोई भी आदि ऋषि या आचार्य तथा ज्योतिषी-चिकित्सक इन असाध्य कष्टकारी रोगों से ग्रसित रहा हो। क्योंकि वह स्वतः ही निश्चित दैनिक क्रियाओं द्वारा अपने को इतना ऊर्जित किये रहते थे ताकि किसी भी प्रकार का कोई विजातीय तत्व शरीर में स्थित रह सके। इन्हीं कारणों से उनका मन मस्तिष्क बहुत विशाल था। पूर्व से प्रचलित यह कहावत कि " जिसका मन सुन्दर उसका तन भी सुन्दर "। यह मन-शक्ति रूपी सुन्दरता उस सूक्ष्म पदार्थ पर निर्भर करती है जो केवल कोई पदार्थ या भौतिक रूप नहीं बल्कि अभौतिक है। जिसका उद्‌गम-स्त्रोत व्यक्ति का वह सूक्ष्म शरीर है जो प्राणी के शरीर में अवस्थित चक्रों में निवास करता है।

" बुध का शरीर के अंग स्थान हृदय तथा शनि – मंगल का कार्य शरीर में रक्त मज्जा को नियमित संचालित कर अग्नाशय को ऊर्जा प्रदान करना होता है ताकि शरीर में स्थित लीवर और पाचन क्रिया सुचारु रूप से कार्य कर सके। "

आखिर जीवन क्या है ? हमारे पूर्व ऋषियों ने अपने निरन्तर प्रयोगों, खोजों तथा तप-बल और योग साधनाओं द्वारा समझ एक लिपिबद्ध शास्त्र की रचना की और उन्होंने बताया कि यह वह रसायनिक जैव प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध कार्बन तथा नाइट्रोजन से है जिसमें जल का उपयोग द्रव अवस्था में होता है। वास्तव में जब-जब प्रोटोप्लाज्म (जैव रसायनिक क्रिया) एमिनो अम्ल न्यूकोलिक अम्ल के निर्माण के लिए आवश्यक रासायनिक पदार्थ की उपस्थिति एक निश्चित ग्रह-ताप, द्रव्यमान व उपयुक्त गति तथा मौसम अनुकूल

हो, जीवन की उत्पत्ति हो जाती है। चूँकि शरीर पूर्णतया चुम्बकीय क्षेत्रों के (आकर्षण–विकर्षण) से घिरा होता है इसलिए जब भी शरीर के चुम्बकीय क्षेत्र में स्थित इलेक्ट्रान तथा प्रोटोन के संघर्षण से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा रूपी क्रियाओं में प्रायः सामंजस्य नष्ट या क्षीण होने लगता है तब इसी कारण से शरीर में पैदा होने वाले, जैव–रसायन (प्लाज्मा), एमिनो एसिड तथा न्यूकोलिक एसिड के कम या ज्यादा बनने से कोलस्ट्राल, ट्राई – ग्लसराइड एवं क्लाट आदि बनने लगते है जिससे मनुष्य हृदय–घात, कैंसर, गठिया, रक्तचाप, एड्स या मधुमेह जैसी लाइलाज बीमारी से जूझने लगता है।

लेकिन आज के भौतिक चिकित्सक केवल चिकित्सा प्रणाली को, आदि ऋषियों द्वारा बतलाए सूक्ष्म शरीर के उन (जैव रसायन) प्लाज्मा, जिनको भौतिक–अभौतिक पदार्थो के आकर्षण–विकर्षण का परिणाम माना था, भौतिक पदार्थो तक ही सीमित रखते हैं। अभौतिक पदार्थो जिनके द्वारा मन–मस्तिष्क पर पड़ने वाली सौर मण्डल अवस्थित सौर – पिण्डों तथा ग्रहों की ऊर्जा तरंगों से शारीरिक चुम्बकीय ऊर्जा क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण शरीर का हर हिस्सा प्रभावित हो जाता है, इन भौतिक शास्त्रियों ने छुआ तक नहीं। इसी कारण आज का आधुनिक चिकित्सक अपने को असहाय महसूस कर रहा है। जबकि पूर्व में हमारे ऋषियों – मनीषियों ने शरीर के प्रत्येक हिस्से को प्रभावित करने वाले बाह्य एवं भीतरी (अभौतिक–भौतिक पदार्थो) कारणों का बड़ी गहराई के साथ अध्ययन किया था फिर सौर मंडल स्थित ग्रह–नक्षत्रों तथा राशियों के साथ तालमेल बिठाते हुए यह निश्चित कर कि कौन अमुक ग्रह या राशि शरीर के किस क्षेत्र या अंग को प्रभावित करेगी, बताया।

जर्मन वैज्ञानिक मैक्स प्लांक ने भी विज्ञान जगत को अपने क्वांटम सिद्धांत के द्वारा जिसे आज विश्व के तमाम भौतिक शास्त्री मान्यता दे चुके हैं, बताया कि मन और पदार्थ को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। सृष्टि के आधारभूत तत्व इलेक्ट्रान और प्रोट्रोन की प्रवृत्ति दो तरफा होती है। कहीं ये सूक्ष्म तत्व ठोस कणों के रूप में मिलते हैं तो कहीं रेडियो वेव्स (तरंग) की तरह अभौतिक पदार्थ के माध्यम में जो कहीं भी प्रवेश कर सकती है। पदार्थ–अपदार्थ (स्थूल और चेतन) के भेद को अस्वीकृत कर इन दोनों ही तत्वों की प्रवृत्तियों के संदर्भ में परिपूरकता के सिद्धान्त पर जोर दिया, परोक्षतः सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व को मान लिया। इसी कार्य को आगे बढ़ाते हुए सन् 1968 में दो रूसी वैज्ञानिकों वी. इयूशिन और बी.ग्रिस चैकों ने भी इसकी पुष्टि की। ये दोनों जीव वैज्ञानिक अपने सतत अनुसंधान के बाद इस नतीजे पर पहुँचे कि मनुष्य में सूक्ष्म शरीर के साथ ही एक अतिरिक्त ऊर्जा शरीर भी होता है। जिसे इन दोनों वैज्ञानिकों ने " बायोलोजिकल प्लाज्मा बाडी " की संज्ञा दी। इनके अनुसार बायो प्लाज्मा का केन्द्र मस्तिष्क में होता है किन्तु इसकी सर्वाधिक सक्रियता (सुषुम्ना) में होती है। सुषुम्ना से ही स्नायु

तंत्रिकाओं के उद्गम बिन्दु पर विद्यमान रहता है। इसी धारण की अन्य वैज्ञानिकों ने भी पुष्टि की। वैज्ञानिक ब्रेतिस्लाव का भी यही मानना है कि मनुष्य शरीर में बायोप्लाज्मा शरीर की कोशिकाओं या अणुओं से भिन्न होता है जिनका अपना एक विद्युत – चुम्बकीय क्षेत्र होता है। मनुष्य की मृत्यु के बाद भी बायो–प्लाज्मा नष्ट नहीं होता, मृत्यु उपरांत यह पदार्थ ब्रह्मण्ड में लीन हो जाता है। जरा सोचिए, क्या यह बायो–प्लाज्मा हमारे आदि ऋषियों द्वारा बताये गये सूक्ष्म शरीर से भिन्न है, उत्तर साफ है कि नहीं।

इस प्रकार उन्होंने (आदि ऋषियों) और अधिक गहराइयों में जाकर अनुसंधान किया तथा आगे बताया कि सौरमंडल से निकलने वाली उन चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा से अनेकानेक प्रकार की क्रियाएँ सर्वप्रथम मनुष्य के मन–मस्तिष्क एवं आमाशय पर पड़ती हैं। जिसके फलस्वरूप प्राणी का मन पल–पल अपनी सोच (भाव) को बदलता हुआ दु:ख–सुख का अनुभव करता है तथा इसके बाद इन ग्रह–नक्षत्रों का शरीर के उन विभिन्न अंगों के क्रियाकलापों पर पड़ने वाले प्रभावों तथा उन द्वारा निर्दिष्ट कार्य क्षेत्रों का निर्धारण किया जिनसे शारीरिक अंग प्रभावित होते हैं। जैसे हृदय – घात पड़ने का सौर–मंडलीय कारण बुध–शनि–मंगल तथा कहीं–कहीं पर सूर्य की युति को भी देखा गया है।

(क्रमशः)

गुंजाना

अनुभवगम्य न होते हुए भी जो थोड़ा बहुत हो जाता है, वह भी उस असीम, अव्यक्त अलख, परमचेतन की ही कृपा है। ऋतम्भरा प्रज्ञा वाली बुद्धि में प्रातिभ बोध सम्पन्न में, उस परम निगूढ़ अविचल निराकार का सत्‌रूपता, आनन्दमयता, चिन्मयता गुणात्मक न होते हुए भी परासत्व में प्रकट होना, साधक के चित्त को आह्लाद युक्त कर सब ओर से समेट कर समाहित करता है। यह तदरूपता भाव प्रधान लोगों को ईष्ट से तदरूपता, ज्ञान प्रधान केवली भाव रूपी परमज्योति में प्रतिष्ठित कराना तथा निष्काम योगी को स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित कराता है।

श्री सद्‌गुरुदेव की कृपा महात्म्य इसलिये सर्वोपरि है कि वह साधक को सारे अन्तरायों से निर्विघ्नतापूर्वक निकाल कर अन्तर में गहनतम् केन्द्र बिन्दु तक पहुँचाता है। तत्वरूप सद्‌गुरु की पहचान होने पर साधक स्वयं गुरुरूप में अवस्थित अपने को पाता है।

अतः सामान्य रूप से सभी आध्यात्म आलोक से आलोकित महापुरुषों ने गुरु–महात्म्य को गद्–गद् कण्ठ से गाया है– बनादास के अन्तःकरण का गुंजन स्वयं में अनुभव करें–

बंदौ हरन भवफंद । गुरु कमलपद मकरंद।
सोय तिलक भाल लगाय । जाते कुअंक नसाय।। 1।।
अंजन सोई दिग दोय। जेहि दिव्य दिृष्टि सुहोय।
अनुरागि ह्रदय लगाय। जेहिं सांति उर ठहराय।

अर्थ सहज है, जिन सद्‌गुरु चरण कमलों की सुरभि संसार सागर से पार करने वाला है उन चरणों की हम वन्दना करते हैं। जो अनुराग पूर्वक इन चरण कमलों को ह्रदय में धारण करते हैं उन्हें परम शांति प्राप्त होता है। साधना का परम शांति ही है। भगवत गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है– "**त्यागति शांति अनन्तरम्**"। ज्ञान, ध्यान सबका विश्राम आत्मप्रतिष्ठा में पहुँच परम शांति लाभ में ही निहित है।

यह स्पंद, यह अनहद् ही बुद्धि को झंकृत कर काव्यधारा बहाती है, अस्तु!

गुरुदेव सम नहिं देव । कोई बिरल जानत भेव।।
जो अवसि गुरुपद निष्ट। मति तासु अतिहिं सरिष्ट।।
गुरु मूर्ति सर्वादेव । किमि अपर देवन सेव।।
कैवल्य दायक ध्यान । जाकी कृपा बलवान।।
जारत अविद्या जाल । काटति अवसि मैं काल।।
है रीति पारस आन । गुरु करत आपु समान।।

–दोहा–

बिन गुरु भौ निधि ना तरै, करै कोटि उपचार।
बनादास केवट बिना, नदी लहै किमि पार।।
गुरु सेवा सोलह कला, पूरन चन्द समानु।
साधन सारे दुइज से, अरु चौदसि लगि जानु।।
गुरु सेवा फल चंद दुर्लि, नितही बढ़ती होति।
साधन सारे नषत से, पुनि खद्योत उदोति।।
भव उतरन की जाहि रूचि, सो सुचि सिष्य सयान।
बनादास मन, क्रम, वचन, गुरु खिदमत् रह लपटान।।

सद्‌गुरु दिव्यातिदिव्य सत्ता है यह भेद कोई–कोई कृतार्थ हुआ साधक ही जानता है। जिसकी एक–निष्ठा सद्‌गुरु चरण में हो वह इस महत रहस्य को जानता है। सद्‌गुरु के स्वरूप के ध्यान से अन्ततोगत्वा केवली (कैवल्य समाधि) भाव में प्रतिष्ठा तथा सर्व अज्ञानावरण का नाश उनकी कृपा से होता है। वे स्वयं महाकाल के काल है। जन्म–मरण के सर्व बन्धन के काटने वाले तथा पारस मणि जो लोहे को सोना स्पर्श से बना देता है उससे भी सहनीय है क्योंकि जिनके स्पर्श से साधक स्वयं सद्‌गुरु रूप में प्रतिष्ठित होता है ऐसे सद्‌गुरु की अनन्त महिमा का ज्ञान अन्तर–नाद में प्रस्फुटित हो बैखर में कणांश व्यक्त हो पाता है।

महिमा अमित गुरुदेव की कवि कौन पै बरनत बनै।
सच्चिदानन्द सरुप साँचेहु जाहि श्रुति नेति मनै।।

❑❑❑

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त–व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा – मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है - सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; वह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है।

- महर्षि अरविन्द

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सेवाड़ी (पुनाहपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति है और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक श्री. [illegible] शर्मा के लिए राष्ट्रीय स्टोर एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सेवाड़ी (पुनाहपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586 सम्पादक : आचार्य [illegible] (डॉ.) [illegible] शर्मा